विवेक-शिखा
श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी
वर्ष–१७
अप्रैल–११९८
अंक–४
रामकृष्ण निलयम्,
जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. श्रीमती गिरिजा देवी—खगड़िया (बिहार)
१५७. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, (नई दिल्ली)
१५८. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१५९. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म० प्र०)
१६०. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म० प्र०)
१६१. श्री डी० एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६२. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६३ डा० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर (उ प्र.)
१६४. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६५. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६६. कुमारी जसबीर कौर आहूजा, पटियाला, पंजाब
१६७. श्रीमती मंजुला बोर्दिया, उदयपुर (राजस्थान)
१६८, श्रीमती सुदेश, अम्बाला शहर (हरयाणा)
१६९. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ० प्र०)
१७०. श्री एस० टी पुराणिक—नागपुर
१७१. श्री घन्नालाल अमृतलाल सोलंकी, कलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, वड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष बोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजीभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एम० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चोपड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची—(बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(म० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलाँग (अरु० प्र०)
१९२. श्री घनश्याम चन्द्राकर, औंधी (म० प्र०)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (म० प्र०)
१९४. स्वामी चिरन्तनानन्द, रा.कृ.मि.नरोत्तमनगर (अ.प्र.)
१९५. श्री हरवंश लाल पहडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९६. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक बिहार (दिल्ली)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो ।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१७ अप्रैल—१९९८ अंक—४

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :

डा० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक :

ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :

विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	७०० रु०
वार्षिक—	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	६५ रु०
एक प्रति—	५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्री रामकृष्ण ने कहा है

(१)

इच्छा होते हुए भी मनुष्य संसार का त्याग नहीं कर सकता क्योंकि वह पूरी तरह प्रारब्ध कर्म और पूर्व संस्कारों के वशीभूत होता है : एक बार एक योगी ने किसी राजा से कहा, "तुम इस बन में मेरे पास बैठकर भगवान का ध्यान-चिन्तन करो।" तब राजा बोला; "नहीं महाराज, अभी भी मेरे भोग बाकी हैं। मैं आपके निकट रह तो सकता हूँ, मगर विषय-भोग की तृष्णा मेरे भीतर बनी ही रहेगी। अगर मैं इस वन में रहूँ तो हो सकता है कि यहीं पर एक राज्य बस जाए ?"

(२)

ईश्वर का ध्यान करते समय मन स्थिर क्यों नहीं होता ? मक्खी कभी हलवाई की दुकान में रखी मिठाई पर बैठती है सही, पर इतने में अगर कोई मेहतर मैले की टोकड़ी लेकर सड़क पर से गुजरे तो वह तुरन्त मिठाई को छोड़ मैले पर जा बैठती है। परन्तु मधु-मक्खी सदा फूलों पर ही बैठती है, गन्दी चीजों पर कभी नहीं बैठती। संसारी जीव भी, मक्खी की ही तरह बीच-बीच में क्षणभर भगवद् भक्ति का स्वाद चखता है, पर दूसरे ही क्षण उसकी स्वाभाविक विषयतृष्णा उसे संसार के विषय भोगों में खींच लाती है। किन्तु जो परमहंस होते हैं वे सदा भगवान् में तल्लीन रहते हुए भक्तिरस का पान करते हैं।

(३)

यथार्थ आत्मज्ञानी तो वही है जो जीवित रहते हुए भी मृत के समान है, अर्थात् जो मृतदेह की भाँति कामना-वासना से रहित हो गया है।

प्रार्थना

तप्तजाम्बूनदेनैव निर्मितं रत्नभूषितम् ।
स्वर्णपुष्पं रघुश्रेष्ठ दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ॥
हृत्पद्मकर्णिकामध्ये सीतया सह राघव ।
निवस त्वं रघुश्रेष्ठ सर्वैरावणैः सह ॥
मनोवाक्कायजनितं कर्म यद् वा शुभाशुभम् ।
तत्सर्वं प्रीतये भूयान्नमो रामाय शार्ङ्गिणे ॥
अपराध सहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽहमिति मां मत्वा क्षमस्व रघुपुंगव ॥
नमस्ते जानकीनाथ रामचन्द्र महीपते ।
पूर्णानन्दैकरूप त्वं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥

—आनन्दरामायण,
मनोहरकाण्ड ३/११-२०

भावार्थ—'हे रघुश्रेष्ठ ! हे प्रभो ! तपाये हुए सोने से बनाये गये तथा रत्नों से विभूषित स्वर्ण पुष्प मैं आपको समर्पित करता हूँ, स्वीकार करने की कृपा कीजिये । हृदय-कमल की कर्णिका के मध्य में समस्त आवरणों से युक्त श्रीसीता जी के साथ, हे रघुश्रेष्ठ, राघव ! आप निवास कीजिये—हे शार्ङ्ग धनुषधारी राम ! आपको नमस्कार है । मेरे द्वारा मन, वचन और शरीर से किये गये शुभ-अशुभ कर्म आपकी प्रसन्नता का कारण बनें । मेरे द्वारा रात-दिन हजारों अपराध किये जाते हैं । हे रघुश्रेष्ठ ! मुझे अपना दास समझकर क्षमा कर दीजिये । हे पृथ्वी के स्वामी, रामचन्द्र; जानकीनाथ ! आपको नमस्कार है । आप एकमात्र पूर्णानन्द-स्वरूप हैं, मेरे अर्घ्य को ग्रहण करने की कृपा कीजिये, आपको नमस्कार है ।

स्वामी विवेकानन्द प्रतिपादित कर्मयोग का वैशिष्टय

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
सम्पादक, वेदान्त केसरी
रामकृष्ण मठ, चेन्नई

स्वामी विवेकानन्द जैसे दुर्लभ देवमानव युग-युगान्तर में एकाध बार अवतीर्ण होते हैं। ये महापुरुष मानव जाति के ऐसे विषम सन्धि-क्षण में आविर्भूत होते हैं जब अधर्म एवं जड़वाद विश्व के अस्तित्व को ही खतरे में डाल देते हैं। तब वे समग्र मानव जाति को एक नयी दिशा प्रदान कर उसका उद्धार साधित करते हैं।

सामान्य मानवी मापदंडों से ऐसे महापुरुषों के महान कार्यों का मूल्यांकन करना संभव नहीं होता। स्वामी विवेकानन्द ने स्वयं एक बार कहा था कि जो कार्य मैंने किया है उसे दूसरा विवेकानन्द ही समझ सकता है। स्वामी तुरीयानन्द जी के अनुसार स्वामी विवेकानन्द ने समग्र विश्व की चिन्तनधारा को ही परिवर्तित कर दिया था। अत: यदि हम अपने पूर्वाभ्यस्त चिन्तन, सदियों से विशेष प्राकर से सोचने में अभ्यस्त मन की सहायता से स्वामी जी के अवदान का अंकन करने का प्रयत्न करें तो असफल ही होंगे। यह समस्या स्वयं स्वामी जी के गुरुभाइयों के साथ भी थी। विदेशों से लौटने के बाद जब स्वामी जी ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना कर सेवा कार्यों का प्रारम्भ किया तो उनके गुरुभाइयों में से कुछ ने यह कहकर आपत्ति की थी कि ये कार्य श्रीरामकृष्ण के उपदेशों के अनुरूप नहीं है। आज उस घटना के ८६ वर्ष बाद स्वामी जी द्वारा प्रचारित एवं प्रतिष्ठित सेवाधर्म धार्मिक संघों, सामाजिक संघटनों एवं जन समाज द्वारा पूर्ण रूप से स्वीकृत एवं अनुमोदित हो चुका है। नव-वेदान्त, व्यावहारिक वेदान्त, सेवाधर्म आदि नामों से जाने वाले स्वामी विवेकानन्द के इस अवदान की मौलिकता, गहरे तात्पर्य एवं महत्व को समझने के लिए हमें सर्वप्रथम गीतोक्त कर्मयोग को जानना आवश्यक है।

गीतोक्त कर्मयोग :

"योग: कर्मसु कौशलम्" कर्म करने की वह कला जिससे कर्म बन्धन का कारण न होकर मुक्ति का कारण हो, कर्मयोग कहलाता है। श्रीमद् भगवद्‌गीता इसका सर्वमान्य एवं सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ है। गीता के अनुसार निष्कामभाव से, कर्म एवं कर्मफल भगवान् को समर्पित करते हुए कर्म करने से कर्त्ता कर्मों के अवश्यंभावी परिणामों से प्रभावित नहीं होता। अगर कर्त्तापन का भाव न रहे तो व्यक्ति सामूहिक नरसंहार जैसा महान पातक करने पर भी उसके दुष्परिणामों से मुक्त रह सकता है। गीतोक्त कर्मयोग के अनुसार कर्म से अधिक महत्वपूर्ण वह भाव है जिससे वह किया जाय। अत: गीता में सर्वत्र कर्मयोगी को अपने दृष्टिकोण को परिवर्तित करने, इन्द्रियों को संयत करने एवं मन को समत्व में स्थापित कर कर्म करने का निर्देश दिया गया है। गीता के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक स्वधर्म है, एवं सभी स्वधर्म श्रेष्ठ होते हैं। ब्राह्मण का स्वधर्म क्षत्रिय के स्वधर्म से भिन्न होगा लेकिन दोनों ही ठीक हैं। स्वधर्म दोषपूर्ण होने पर भी त्याज्य नहीं है।

क्या कर्म से मुक्ति संभव है? क्या कर्मयोग

मुक्ति का एक स्वतन्त्र मार्ग है, जिसे ज्ञान भक्ति आदि अन्य उपायों की अपेक्षा नहीं है? इस विषय में मतभेद हैं। आचार्य शंकर के अनुसार कर्म कभी भी मुक्ति प्रदान नहीं कर सकता। सकाम कर्म तो बन्धन का कारण है ही, कर्मयोग कहलाने वाला निष्काम कर्म भी चित्तशुद्धि मात्र करता है। मुक्ति तो केवल ज्ञान से ही संभव है।

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये।
वस्तु सिद्धिर्विचारेण न किंचित् कोटि कर्मभिः ।।

कर्म से चित्त शुद्ध होता है, चित्त शुद्धि से वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्य से ज्ञान की पात्रता जन्मती है।

स्वपरक एवं परपरक दृष्टिकोण :

गीतोक्त कर्मयोग एवं तत्सम्बन्धी उपर्युक्त प्रचलित मान्यताओं से स्वामी विवेकानन्द प्रतिपादित कर्मयोग के पार्थक्य एवं वैशिष्ट्य को समझने के लिए कुछ मौलिक एवं सैद्धान्तिक तथ्यों को सर्वप्रथम हृदयंगम करना आवश्यक है।

हमारा छोटा-बड़ा प्रत्येक कर्म कुछ-न-कुछ फल अथवा परिणाम प्रसूत करता है। परिणामों में कुछ तो कर्त्ता से सम्बन्धित होते, तथा उसे प्रभावित करते हैं; तथा कुछ उसके आस-पास के वातावरण, प्राणि जगत् एवं समाज को प्रभावित करते हैं। इन्हें हम क्रमशः स्वपरक एवं परपरक (Subjective and Objective) परिणामों की संज्ञा दे सकते हैं। स्वपरक परिणाम कर्त्ता के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है जबकि परपरक परिणाम कर्त्ता के दृष्टिकोण से निरपेक्ष रहता है। अर्जुन एवं भगवान् श्रीकृष्ण के प्रारम्भिक वार्त्तालाप से प्रकटित उनके दृष्टिकोणों से इन दोनों का अन्तर समझा जा सकता है। गीता के प्रथम अध्याय में अर्जुन युद्ध के मुख्यतः परपरक भावी दुष्परिणामों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत करता है यथा, 'युद्ध से कुल क्षय होगा, कुलक्षय से कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जायेंगी, समाज का ढाँचा बिगड़ जायेगा, वर्ण संकर पैदा होंगे और अन्त में पितरों को पिण्ड देने वाला भी कोई नहीं रहेगा। इस प्रकार युद्ध से सर्वनाश हो जायेगा।' भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन की इन बातों का न तो उत्तर ही दिया और न ही उनका प्रतिवाद किया। युद्ध के परपरक (Objective) परिणाम क्या होंगे, इस विषय की पूर्ण उपेक्षा कर भगवान् ने अर्जुन को स्वपरक दृष्टि प्रदान की। यथा आत्मा अमर है, देह नश्वर है, जो नित्य है उसका कभी नाश नहीं होता, और जो असत् है उसका अस्तित्व संभव नहीं है। तुम युद्ध के परिणामों की चिन्ता किये बिना हर्ष-विषाद रहित हो स्वधर्म करो। यदि तुम निष्काम भाव से स्वधर्म करोगे तो मरने के बाद स्वर्ग, अथवा विजयी होने पर राज्य, का भोग करोगे। हाँ, एक-दो स्थानों पर अवश्य भगवान परपरक हेतुओं का उल्लेख करते हैं। यथा लोक संग्रहार्थ कर्म करो क्योंकि जनसमाज श्रेष्ठजनों के आचरण का अनुसरण करता है। यही कारण है कि भगवान् स्वयं मुक्त होते हुए भी कर्म करते हैं जिससे प्रजा का हनन न हो।

कर्म के प्रति ये दो दृष्टिकोण वस्तुतः दो परस्पर विरोधी मौलिक विचारधाराओं का प्रतिपादन करते हैं। भारतीय दर्शन, संस्कृति एवं जीवन पद्धति स्वपरक दृष्टिकोण पर आधारित है, जबकि पाश्चात्य दर्शन एवं सभ्यता का मूल परपरक दृष्टिकोण है। भारतीय के लिए उसका अन्तर्जगत् महत्वपूर्ण है, जबकि पाश्चात्य व्यक्ति के लिए बाह्य जगत अधिक सत्य है। भारतीय परम्परा में जगत मिथ्या, अनित्य, क्षणभंगुर माना गया है, लेकिन पाश्चात्य चिंतन के अनुसार वह पूर्ण रूपेण सत्य है। अतः जहाँ एक भारतवासी संसार को त्याग कर स्वयं की मुक्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है वहीं पाश्चात्य देशवासी इस जगत को

सुधारने संवारने एवं सुन्दर बनाने का प्रयत्न करता है। भारतीय साधक यह जानने का प्रयत्न करता है कि कर्म से वह मुक्ति की ओर कितना बढ़ पाया है। पाश्चात्य मानव यह सोचता है कि अमुक कर्म से वह अपने संसार को कितना सुखमय बना सका है।

स्वामी जी के कर्म योग का वैशिष्ट्य :

ये दोनों ही दृष्टिकोण अपूर्ण हैं। इन दोनों का सन्तुलित समन्वय ही एक पूर्ण जीवन-दर्शन की सृष्टि कर सकता है और यह समन्वय स्वामी विवेकानन्द की एक महती देन है। स्वामी जी गीता के परमभक्त थे एवं अपने ग्रन्थ 'कर्मयोग' एवं इस विषय पर दिये गये अपने व्याख्यानों एवं वार्त्तालाप में उन्होंने गीतोक्त स्वपरक सिद्धांत का अनुमोदन किया है। वे कहते हैं कि संसार कुत्ते की पूँछ की तरह है, जिसे सीधा नहीं किया जा सकता है। संसार का कल्याण करने के प्रयत्न से स्वयं हमारा ही लाभ होता है। संसार में दुःख-कष्ट वैसे ही बने रहते हैं, उनका थोड़ा बहुत फेर-बदल भर हो जाता है। आसक्ति ही बन्धन एवं दुःख का कारण है, अतः अनासक्त होकर कर्म करना चाहिए इत्यादि। धर्म की परिभाषा करते हुए भी स्वामी जी प्रत्येक आत्मा में अन्तर्निहित ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति को ही जीवन के लक्ष्य के रूप में तथा कर्मयोग को उसकी प्राप्ति के एक उपाय विशेष के रूप में निर्धारित करते हैं। अपने वार्त्तालापों में स्वामी जी आचार्य शंकर के इस सिद्धांत का समर्थन भी करते हैं कि कर्म से चित्त-शुद्धि होती है। लेकिन मुक्ति ज्ञान से ही संभव है।

इस प्रकार कर्मयोग के स्वपरक पक्ष को स्वीकार करते हुए भी स्वामी जी ने उसके परपरक पक्ष की उपेक्षा नहीं की है। उनके पत्रों, वार्तालापों एवं भारत में दिये गये व्याख्यानों में वे लोक कल्याण, जनहित आदि के लिए भारत-वासियों को ओजस्वी भाषा में प्रोत्साहित करते दिखाई देते हैं। उनके अनुसार कर्म के ये दोनों पक्ष—आत्मा की मुक्ति और जगत् का हित-परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि परिपूरक हैं। यह केवल इसलिए नहीं कि जगत् कल्याण के लिए किये गये कर्म चित्त-शुद्धि कर मुक्ति में सहायक होते हैं, बल्कि स्वामी जी के अनुसार दोनों में कोई भेद नहीं है। जब जीव और जगत्, समष्टि और व्यष्टि दोनों में केवल एक ही ब्रह्म-सत्ता विद्यमान है, तब जगत् का हित अपना ही हित हुआ।

स्वामी जी तो इससे भी एक कदम आगे बढ़ गये हैं। वे स्वयं की मुक्ति के प्रयत्न को हीन एवं तुच्छ कहने से भी नहीं चूकते। अपने एक शिष्य को, जो एकान्त में तपस्या करना चाहता था, स्वामी जी ने भर्त्सना करते हुए कहा था कि स्वयं की मुक्ति के लिए प्रयत्न करना स्वार्थ है, और यदि वह ऐसा करेगा तो नरक में जायेगा। जीव-कल्याण की यह शिक्षा उन्हें स्वयं श्रीरामकृष्ण से मिली थी। एक बार स्वामी जी ने श्रीरामकृष्ण के समक्ष सदा निर्विकल्प समाधि में डूबे रहने की इच्छा व्यक्त की थी। इसके उत्तर में श्रीरामकृष्ण ने उन्हें हीन-बुद्धि बताया था। उनके अनुसार इससे भी ऊँची एक अवस्था है—अर्थात् सर्वभूतों में ब्रह्मदर्शन कर जीव-सेवा करना। श्रीरामकृष्ण चाहते थे कि स्वामी जी संसार के तापित, पीड़ित लोगों को आश्रय एवं शान्ति प्रदान करने वाले वटवृक्ष के समान होवें। अपने आध्यात्मिक जीवन के प्रारम्भ में गुरुदेव के श्रीमुख से सुनी यह बात भले ही स्वामी जी उस समय पूरी तरह स्वीकार न कर सके हों, पर परवर्त्ती काल में उन्होंने इसे स्वीकार किया था। वे गरीब, रोगी, दुःखी, पापी नारायण की सेवा के लिए बार-बार जन्म लेकर हजारों दुःख सहन करने को तैयार थे।

स्वामी विवेकानन्द के स्वयं के शब्दों में

"मानव जाति को उसके ब्रह्मत्व की शिक्षा देना और यह बताना कि जीवन के प्रत्येक स्तर पर उसे किस प्रकार अभिव्यक्त किया जाय," उनका जीवन सन्देश है और यही उनके द्वारा प्रतिपादित नववेदान्त का लक्ष्य। जो लोग स्वामी जी के कर्मयोग को जीवन व्रत के रूप में स्वीकार करेंगे, वे स्वयं की मुक्ति का प्रयत्न न करके मानव जाति की, समाज के प्रत्येक सदस्य की इस प्रकार सेवा करेंगे जिससे सेव्य अपने चैतन्य स्वरुप को पहचाने, अपने भीतर अन्तर्निहित ज्ञान, शक्ति एवं आनन्द के प्रति सजग हो, उसे अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करे। वे एक ऐसे आदर्श समाज की रचना करने में अग्रसर होंगे जहाँ समाज के प्रत्येक सदस्य को अपने अन्तर्निहित ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति का समुचित अवसर प्राप्त हो। निरपेक्ष दृष्टि से (In the absolute sense) जगत् के कल्याण की संभावना को अस्वीकार करते हुए भी स्वामीजी सापेक्ष दृष्टि से उसके सुधार की संभावना को अस्वीकार नहीं करते। वे एक ऐसे आदर्श समाज की कल्पना करते हैं, जहाँ कोई भी दुःखी न हो, प्रेम एवं सद्भावना का साम्राज्य हो, रोग-शोक का अभाव हो एवं पशु बलि का कोई स्थान न हो। जहाँ केवल एक ही जाति, ब्राह्मण जाति हो एवं जिस सत्य युग में मनुष्य दैवी सम्पद् सहिण जन्म ग्रहण करें।

मानव में प्रसुप्त चैतन्य सदा अपने को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न कर रहा है। यह प्रयत्न उसकी अभिव्यक्ति में बाधक प्रकृति के नियमन एवं विजय के रूप में प्रकट होता है। प्रकृति भी दो प्रकार की है: अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति। भौतिक विज्ञान की सहायता से बाह्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करना पाश्चात्य देशों का मुख्य लक्ष्य रहा है, जबकि भारतीय सभ्यता अध्यात्म-विद्या एवं योग की सहायता से अन्तः प्रकृति पर विजय प्राप्त करने पर आधारित रही है। स्वामी जी का वैशिष्ट्य इसी में है कि उन्होंने इन दोनों प्रयासों को मानव के ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति के दो पहलुओं के रूप में स्वीकार किया है। ज्ञान, योग, भक्ति, इन्द्रिय विग्रह एवं मनोविग्रह आदि जिस प्रकार मानव की अन्तः प्रकृति के नियमन के उपाय एवं ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति की प्रचेष्टाएँ हैं, उसी प्रकार विज्ञान, साहित्य, कला, व्यापार-वाणिज्य, उद्योग एवं तकनीकी भी बहिःप्रकृति के नियमन के उपाय एवं तद्धारा ब्रह्मत्व की अभिव्यक्ति के प्रकार हैं। यही कारण है कि प्रागैतिहासिक काल से आज तक किये गये मानव के सभी प्रयास एवं प्रगति, उसके सभी क्रिया-कलाप स्वामी विवेकानन्द की अभिरुचि के विषय थे। स्वामी जी के आविर्भाव के बाद कर्म और उपासना, सेवा और साधना, परिश्रम एवं प्रार्थना में अन्तर समाप्त हो गया है। खेतों में हल चलाना या देवालय में आरती करना, विद्यालय में शिक्षा देना अथवा धर्मशास्त्रों का अध्ययन करना; कारखाने में काम करना या आंखें मूँद कर ध्यान करना, समान हो गये हैं।

शिव ज्ञान से जीव-सेवा :

स्वामी विवेकानन्द प्रतिपादित कर्मयोग का एक रूप विशिष्ट है—सेवा, शिवज्ञान से जीवसेवा एक ओर जहाँ यह आत्मा की मुक्ति का उत्कृष्ट उपाय है, वहीं दूसरी ओर यह जगत्-हित का प्रभावशाली साधन भी है। मोक्ष के उपाय के रूप में इसमें ज्ञान, भक्ति, कर्म, योग, चारों का समावेश हो जाता है। सेव्य मेरी आत्मा का ही एक अंग या रूप है, यह ज्ञान इसे ज्ञानयोग में परिणत कर सकता है। सेव्य, शिव अथवा मेरे इष्टदेव हैं, इस प्रकार की दृष्टि से यही सेवा भक्ति योग का रूप ग्रहण कर लेती है। सेवा के लिए आवश्यक एकाग्रता एवं मानसिक प्रशिक्षण इसमें योग का अंशदान करता है और कर्म तो इसका अविभाज्य अंग है ही।

सेवा के परपरक पक्ष में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इसका उद्देश्य सेव्य के अन्न-वस्त्र की आपूर्त्ति अथवा विद्या दान मात्र नहीं है। सेव्य की तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति आवश्यक होते हुए भी सेवा का अन्तिम लक्ष्य सेव्य को उसके भीतर प्रसन्न देवत्व/ब्रह्मत्व के प्रति जाग्रत् करना एवं उसे अपने पैरों पर खड़ा करना है, जिससे वह पूर्ण ज्ञान, शक्ति एवं आनन्द का अधिकारी बन सके। उसके भीतर का ब्रह्मत्व तो सदा ही अभिव्यक्त होने का प्रयत्न कर रहा है, सेवा एवं शिक्षा का उद्देश्य अभिव्यक्ति की बाधाओं को हटा देना मात्र है, न कि ऊपर, बाहर से कुछ थोपना और न ही सेव्य को सेवक पर आश्रित बना देना। यही कारण है कि स्वामी जी सेवा से अधिक शिक्षा पर जोर दिया करते थे। मानव जहाँ हैं; उसे वहीं से उठाओ, उसके आत्म विश्वास को जगाओ, स्वयं की प्रसुप्त शक्ति के प्रति सजग करो और उसकी स्वयं की व्यक्ति सहज प्रकृति एवं स्वभाव के अनुसार विकसित होने दो —यही हैं स्वामी विवेकानन्द की सेवा एवं शिक्षा के सिद्धान्त।

स्वामी विवेकानन्द प्रतिपादित कर्मयोग के अधिकारी के लक्षण :

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जायेगा कि स्वामी जी प्रतिपादित कर्मयोग मानव की सर्वांगीण प्रगति का एक विशिष्ट उपाय है, जिसको करने के लिए कुछ गुण विशेष आवश्यक हैं। जिस प्रकार ज्ञानयोग में सफल होने के लिए साधन चतुष्टय की, राजयोग में सिद्धि लाभ के लिए यम-नियम-आसन-प्राणायामादि की आवश्यकता है, उसी प्रकार स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित कर्मयोग के लिए हृदयवत्ता, बुद्धिमत्ता एवं व्यावहारिक क्षमता की आवश्यकता है। क्या ऐसे कर्म योगी में हृदय की अनुभव शक्ति है? क्या वह असंख्य पीड़ित, दरिद्र, अज्ञानी नर-नारियों के दुःख को स्वयं अनुभव कर सकता है? कितनी तीव्र है उसकी अनुभव-शक्ति? यदि वह मानव के दुःख-दर्द को ऐसी तीव्रता से अनुभव कर सकता है कि उसकी नींद ही हराम हो जाय तो वह एक आदर्श कर्म-योगी बन सकता है। लेकिन इतना ही पर्याप्त नहीं है। उसमें दूसरों के दुःख-दर्द दूर करने के उपाय सोच निकालने की भी सामर्थ्य होनी चाहिए, अन्यथा उसकी हृदयवत्ता कोरी भावुकता बनकर रह जायेगी। उसे तीक्ष्ण बुद्धि होना होगा जिससे वह समस्या की गहराई में जाकर स्थाई समाधान खोज सके। तदनंतर उसमें उस समाधान को कार्यरूप देने की सामर्थ्य भी होना चाहिए। उसमें इतनी दृढ़ता, साहस और लगन होना चाहिए कि वह उसके लक्ष्य प्राप्ति की सभी बाधाओं को दूर कर सिद्ध काम हो सके।

सर्वोपरि, उसमें यह दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि जिसकी वह सेवा करने जा रहा है, वह नारायण है। स्वयं के चैतन्य स्वरुप के प्रति किसी-न-किसी मात्रा में सजग हुए बिना सेव्य मानव में नारायण का भाव रखना संभव नहीं है। विशेषकर दुष्ट, व्यग्र, क्रोधी व्यक्ति में, राग, शोक, अपराध एवं मानसिक विकृति से ग्रसित मानव में, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव आत्मा का प्रकाश पहचानना अत्यन्त कठिन है। सदियों से देव-विग्रहों में भगवान् को देखने का अभ्यास करते-करते आज यह हमारे लिए अत्यन्त सहज हो गया है। सड़क के किनारे किसी वटवृक्ष के नीचे बने छोटे-से मन्दिर को देखकर हमारा मस्तक अनायास ही झुक जाता है, हाथ अपने आप प्रणाम में जुड़ जाते हैं। मानव में भगवान् का अधिक प्रकाश होते हुए भी हम मानव में पापी-सन्त, धनी-दरिद्र को ही देखते हैं परमात्मा को नहीं। स्वामी विवेकानन्द

प्रतिपादित कर्मयोगी को ब्राह्मण-शूद्र, पण्डित-मूर्ख, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी में निरन्तर नारायण को, शिव को देखने का प्रयत्न करना होगा। स्वयं के ब्रह्मत्व में दृढ़-प्रतिष्ठ एवं सभी प्राणियों के देवत्व में पूर्ण आस्थावान हजारों कर्मयोगियों के सदियों तक सतत् प्रयास से एक समय ऐसा आयेगा जब मानव समाज के लिए दरिद्र, अज्ञानी, पापी में भी परमात्मा को देखना उतना ही सहज एवं स्वाभाविक हो जायेगा। जितना कि आज प्रस्तर मूर्ति में चैतन्य को देखना।

●

---

५ अप्रैल: रामनवमी

भगवान् राम के अवतार का प्रयोजन

—पं० रामकिंकर जी उपाध्याय

विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।

अर्थ—विप्र, धेनु, देवता और संतों के हित के लिए ही भगवान् ने मनुष्य-रूप में अवतार ग्रहण किया। उनका यह अवतार-शरीर अपनी इच्छा के द्वारा निर्मित था। वस्तुतः ईश्वर तो माया, गुण और इन्द्रियों से परे हैं।

प्रस्तुत दोहे में भगवान् राम के अवतार के उद्देश्य पर प्रकाश डाला गया है। अयोध्या के राजमहल में कौशल्या अम्बा के समक्ष श्रीराम चतुर्भुज-रूप में प्रकट हुए और माँ के अनुरोध पर नन्हे बालक के रूप में स्वयं को परिवर्तित करके रुदन करने लगते हैं। ठीक उन्हीं क्षणों में गोस्वामीजी स्मरण दिलाते हैं कि यह अवतार किनका है? उनका वास्तविक स्वरूप क्या है? एवं उनके अवतार लेने का उद्देश्य क्या है? कौसल्या अम्बा के समक्ष श्रीराम के प्राकट्य की वेला में गोस्वामीजी ने एक वाक्य का प्रयोग किया और उस वाक्य में श्रीराम को 'कौसल्या-हितकारी, कहकर स्मरण किया गया है:

भए प्रगट कृपाला, दीनदयाला कौसल्या-हितकारी।

इसके पश्चात् छन्द में श्रीराम और कौसल्या अम्बा के वार्तालाप के बाद अन्त में ईश्वर के अवतार के उद्देश्य में 'विप्र, धेनु, सुर और संत' का हित बताया जाता है।

कौसल्या-हितकारी शब्द में जहाँ पर वैयक्तिकता की धारणा है, वहाँ छन्द के पश्चात् उल्लिखित इस दोहे में ईश्वर के अवतार के व्यापक उद्देश्य की चर्चा की गई है। इस पंक्ति में भी हित की ही बात दिखाई गई है। किन्तु कौसल्या-हितकारी के स्थान पर "विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज-अवतार" कहकर अवतार के उद्देश्य को व्यापकता प्रदान की गई है। इन दोनों में परस्पर-विरोध प्रतीत होने पर भी वस्तुतः व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध में मानस के समन्वयी दर्शन पर इससे प्रकाश पड़ता है। ईश्वर की उपलब्धि वैयक्तिक आकांक्षा का परिणाम भी हो सकती है और लोकमंगल के लिए यह समाज की माँग भी हो सकती है। व्यक्ति और समाज के हित का समन्वय ही मानस का उद्देश्य है। यदि यह कह दिया जाए कि "ईश्वर का अवतार तभी होता है जब समाज

के सारे व्यक्ति मिलकर उससे अवतार लेने की प्रार्थना करें," तो सम्भवतः यह एक बहुत ही बड़ा कष्टकारक बन्धन होगा। इसलिए ईश्वर की उपलब्धि न केवल सामाजिक कारणों से, अपितु वैयक्तिक आवश्यकता की अनुभूति की तीव्रता से भी, सम्भव होती है।

मनु और शतरूपा के रूप में महाराज श्री दशरथ और कौसल्या ने जो साधना की थी, वह व्यक्तिगत साधना थी। और व्यक्तिगत साधना के परिणामस्वरूप ही उन्होंने श्रीराम को पुत्र-रूप में पाया। क्योंकि दशरथ और कौसल्या की सम्मिलित माँग यही थी।

दानि-सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सति भाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ॥

मनु और शतरूपा के द्वारा की गई वैयक्तिक साधना का उद्देश्य अपने अन्तःकरण को चरम तृप्ति की दिशा में ले जाना था। मनु और शतरूपा को व्यक्तिगत जीवन में समग्र सुख, सुविधा, वैभव व सत्ता और धर्म के सुख उपलब्ध होने पर भी जिस अभाव की अनुभूति हो रही थी, उसी की पूर्त्ति के लिए तप किया गया था, और इस साधना के परिणामस्वरूप भगवान् ने मनुष्य बनना स्वीकार कर लिया। इसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को जहाँ यह आश्वासन प्राप्त होता है कि यह आवश्यक नहीं है कि सारा समाज मिलकर जब ईश्वर की आकांक्षा करे, तभी ईश्वर उसे उपलब्ध हो; इसके स्थान पर व्यक्ति को प्रोत्साहित करने के लिए इतना ही यथेष्ट है कि ईश्वर की उपलब्धि एक व्यक्ति की व्यक्तिगत आकांक्षा और उसके अन्तःकरण की भावना की परितृप्ति के लिए सम्भव है। किन्तु एक व्यक्ति की आकांक्षा की पूर्ति के लिए लिया जाने वाला अवतार केवल उस व्यक्ति का ही हित सम्पन्न करता हो, ऐसी बात नहीं है।

रामचरितमानस के दर्शन में व्यक्ति और समाज एक-दूसरे के पूरक हैं। जहाँ पर व्यक्ति अपने मन की शान्ति के लिए प्रयास करता है, वहीं पर उसका यह भी कर्त्तव्य है कि उसका यह सुख लोक-हित का विरोधी न हो। इसीलिए रामचरितमानस की रचना में भी यही दोनों मूल सूत्र विद्यमान हैं कि वह परस्पर-विरोधी प्रतीत होने पर भी वस्तुतः एक-दूसरे के पूरक हों। गोस्वामीजी कहते हैं—"मैं इस रामचरितमानस की रचना 'स्वान्तः सुखाय' कर रहा हूँ"।

नाना-पुराण-निगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबन्ध मतिमंजुलमातनोति॥

कविता की परिभाषा करते हुए वे कहते हैं कि कविता को सर्वहित की भावना से प्रेरित होना चाहिए। यह भी उनका स्पष्ट आग्रह है।

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कर हित होई॥

और इस प्रकार कवि का 'स्व' 'सब' का पूरक है, न कि सबका विरोधी। ठीक इसी प्रकार प्रस्तुत पंक्तियों में भी ईश्वर के अवतार के उस वैयक्तिक कारण का उल्लेख किया गया है। और केवल उल्लेख ही नहीं किया गया है, अपितु 'कौसल्या-हितकारी' शब्द को अधिक प्राथमिकता दी गई है। इसका तात्पर्य स्पष्ट है; यदि कौसल्या अम्बा के अन्तःकरण में श्रीराम को पाने की इतनी तीव्र आकांक्षा न होती तो सम्भव है कि श्रीराम-अवतार इतनी सरलता से न होता। इसलिए कौसल्या अम्बा की इस वैयक्तिक साधना को कवि नमन करता है, जिससे द्रवित होकर श्रीराम मनुष्य के रूप में अवतरित होते हैं :

ब्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या की गोद॥

किन्तु कौसल्या का हित सर्वहित का विरोधी नहीं है, क्योंकि कौसल्या अम्बा-जैसे उदात्त चरित्र वाले व्यक्ति जब समाज को संकट में देखते हैं, तब वे अपने व्यक्तिगत हित का त्याग करने में संकोच नहीं करते। इसीलिए, यद्यपि महाराज श्री दशरथ और कौसल्या ने अपनी तपस्या के के द्वारा ब्रह्म को मनुष्य-रूप में पाया, किन्तु महर्षि विश्वामित्र के आगमन पर अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए उन्हें समर्पित कर दिया। इस प्रकार व्यक्तिगत साधना द्वारा उपलब्ध ईश्वर विना किसी प्रयास के ही समाज को प्राप्त हो जाता है। कौसल्या का जीवन वस्तुतः लोक-कल्याण के लिए समर्पित है; क्योंकि उनके चरित्र में समग्र संतत्व विद्यमान है—और सन्त का लक्षण यही है।

पर उपकार बचन मन काया।
सन्त सहज सुभाउ खगराया॥

यद्यपि ईश्वर के अवतार के लिए यह कहना अधिक उपयुक्त होता कि वह समग्र विश्व के कल्याण के लिए ही अवतरित हुआ। किन्तु "विप्र, धेनु, सुर और सन्त का हित" भी वस्तुतः समस्त लोक का प्रतिनिधित्व करता है। विप्र समाज का मूर्धन्य है, वह विचार-प्रधान है। जिस समाज में विचार और विवेक की अवहेलना होती है, वह समाज पतन की दिशा में उन्मुख होता है। किन्तु वह विचार और समाज, केवल अपने अहंकार के लिए नहीं, अपितु, लोक-मंगल के लिए कार्य कर रहा हो, यह आवश्यक है।

महर्षि विश्वामित्र तपोवन में रहकर जिस महान् यज्ञ-साधना को सम्पन्न करते हैं, वह उनकी वैयक्तिक आकांक्षा की पूर्ति के लिए न होकर लोक-मंगल के लिए है। ब्राह्मण का सारा जीवन समाज की सुव्यवस्था लिए के समर्पित था। उसे आदेश दिया गया है :

ब्राह्मणस्य शरीरोऽयम् क्षुद्रकामय नेष्यते

"ब्राह्मण का शरीर क्षुद्र कामनाओं की पूर्ति के लिए नहीं है।" यद्यपि समाज में ब्राह्मण को विशिष्ट सम्मान प्राप्त होता रहा है, उसके प्रति अनेक लोगों के अन्तःकरण में तीव्र आक्रोश विद्यमान है। उन्हें ऐसा लगता है कि यह तो एक वर्ग और जाति-विशेष के प्रति पक्षपात है। और इसी के आधार पर बहुधा तुलसीदास जी को एक ब्राह्मणवादी संकीर्ण मनोवृत्ति का व्यक्ति सिद्ध करने का प्रयास भी किया जाता है। सत्य तो यह है कि जहाँ विप्र को यह सम्मान प्राप्त था, वहाँ उससे यह आशा भी की जाती थी कि उसका समग्र जीवन व्यक्तिगत सुख-सुविधा के स्थान पर धर्म-साधना के लिए समर्पित होगा। ईश्वर का अवतार किसी जाति विशेष के प्रति उनके पक्षपात का परिचायक नहीं है। अगर ईश्वर को यह पक्षपात अभीष्ट होता तो वह स्वयं भी ब्राह्मण-वंश में ही जन्म लेता। किन्तु जहाँ परशुराम के रूप में एक अवतार ब्राह्मण जाति में जन्म लेता है, वहाँ पर श्रीराम समस्त सद्‌गुणों तथा सामर्थ्य से सम्पन्न होते हुए भी क्षत्रिय-वंश में जन्म लेते हैं। और 'तथाकथित बाह्मणवादी' तुलसी परशुराम की तुलना में राम की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं! परशुराम से राम की स्तुति कराते हैं! बेचारे जातीय विद्वेष से पीड़ित आलोचक तुलसी के दर्शन को समझ ही नहीं सकते।

ब्राह्मण विश्व-हित का ही प्रतीक है। महर्षि विश्वामित्र के चरित्र के माध्यम से इसे प्रकट किया गया। विश्वामित्र ब्राह्मण के रूप में श्रीराम की याचना करने जाते हैं। महर्षि की यह याचना लोक-मंगल के लिए थी। विश्वामित्र

के नाम का अर्थ है 'विश्व का मित्र'। इस प्रकार एक विप्र के माध्यम से श्रीराम की उपलब्धि केवल ब्राह्मण जाति के लिए ही नहीं, अपितु समस्त विश्व के हित के लिए प्रयुक्त होती है। इसीलिए महर्षि विश्वामित्र राम की याचना के पश्चात् उन्हें यज्ञ-रक्षा के लिए ले आते हैं एवं यज्ञ-संरक्षण के बाद जनकपुर ले जाने में उन्हें रंच मात्र संकोच नहीं होता। क्योंकि उनकी दृष्टि में श्रीराम केवल महारज श्री दशरथ की ही व्यक्तिगत संपत्ति नहीं हैं।

विप्र-हित की ही भाँति धेनु-हित के लिए ईश्वर के अवतार में भी यही सत्य निहित है। गाय अहिंसा की प्रतीक है। वह तृण के बदले में दुग्ध प्रदान करती है। दुग्ध के द्वारा अपने बछड़े का ही नहीं, अपितु अनगिनत व्यक्तियों का पोषण करती है, किन्तु वह गाय किसी के भी प्रतिकूल नहीं है। नरहरिदासजी ने कभी अकबर के समक्ष गाय की सराहना में जो वाक्य कहे थे वे गाय की लोक-मंगलकारी भावना के ही सर्वश्रेष्ठ प्रतीक हैं :

हिन्दुहिं मधुर न देइ कटुक तुरकहिं न पिलावति।

भले ही उसके प्रति कोई व्यक्ति हिंसक भाव रखे अथवा अहिंसक, गाय तो सबको समान रूप से अपने स्नेहमय वात्सल्य का दान देकर तृप्त करती है। इसलिए 'धेनुहित' केवल एक समाज-विशेष के लिए नहीं, अपितु धेनु के माध्यम से यह समस्त विश्व को उपलब्ध होने वाली वात्सल्यमयी वृत्ति है।

मानस के प्रारम्भ में रावण अत्याचार से संत्रस्त पृथ्वी गाय के रूप में ही मुनियों और देवताओं के पास जाती है :

धेनु रूप धरि हृदय विचारी।
गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥
निज संताप सुनाइसि रोई।
काहू तें कछु काज न होई॥

पृथ्वी व्यापक रूप में गाय की ही प्रतीक है। वह समस्त संसार के प्राणियों को अन्न का दान देती है, सबको धारण करती है। उसे परद्रोही प्रिय नहीं है :

गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही।
जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥

देवता प्रकृति की वे शक्तियां हैं जो उसका संचालन करती हैं। वे नियमों में आबद्ध हैं। रावण और कुम्भकर्ण की तपस्या के पश्चात् वरदान देने के लिए आए हुए ब्रह्मा और शंकर को यह ज्ञात था कि राक्षसों को वरदान देने से विश्व के समक्ष समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। "किन्तु जहाँ भी साधना और तपस्या है वहां फल देना ही चाहिए"—इस संवैधानिक मान्यता और मर्यादा के कारण ही ब्रह्मा और शंकर के द्वारा रावण को वरदान प्राप्त होता है। इसी प्रकार से देवताओं के द्वारा क्षमता प्राप्त करता हुआ व्यक्ति यदि उस क्षमता का सदुपयोग करता है, तो वस्तुतः देव-शक्ति इसके लिए उस व्यक्ति की कृतज्ञ होती है। किन्तु जब कोई व्यक्ति देवता से ही प्राप्त शक्ति का उपयोग केवल अपने स्वार्थ और लोक-मंगल के हनन के लिए करने लगता है, तब उस समय देवता भी संत्रस्त हो उठता है। देवता के लिए अवतार लेने का तात्पर्य केवल उनके भोगों की रक्षा के लिए अवतरित होने से नहीं है। वस्तुतः विश्व-चक्र में समुचित रूप से प्रकृति का संचालन हो, इसके लिए आवश्यक है कि देवता और मनुष्य के सम्बन्ध परस्पर एक-दूसरे से श्रेष्ठ बने रहें। प्रकृति के इन नियमों में जब कोई व्यक्ति व्यवधान उपस्थित करता है, तब ईश्वर देवताओं के हित के माध्यम से उन शक्तियों को दण्डित करता हुआ प्रकृति के सन्तुलन को विश्व में स्थापित करता है!

तथा विप्र, धेनु, सुर के बाद सन्त के रूप में

जिस चतुर्थ नाम का उल्लेख किया गया है वह तो मानो पर-हित का घनीभूत रूप ही है। पर-हित ही उसका स्वभाव है। इसलिए सन्त का लक्षण ही श्रीरामचरितमानस में यह बताया गया है :

संत सहहिं दुख पर-हित लागी।
पर-दुख-हेतु असंत अभागी॥

संसार के समस्त प्राणियों की पीड़ा के अपहरण के लिए बड़े-से-बड़ा कष्ट उठाना तो संतों का सहज स्वभाव ही है। किन्तु ऐसे भी व्यक्तियों का समाज में उद्भव होता है कि जो परहित-निरत सन्तों के प्रति भी हिंसक होकर उनके विनाश पर तुल जाते हैं। ऐसी स्थिति में परहित-निरत सन्तों की रक्षा के लिए ईश्वर के अवतार की घोषणा मानो विश्व-हित की रक्षा से ही सम्बद्ध है।

विभीषण से श्रीराम ने अवतार के उद्देश्य की व्याख्या करते हुए कहा।

तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे।
धरउँ देह नहिं आन निहोरे॥
सगुन उपासक परहित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम, जिन्ह के द्विज पद प्रेम॥

जब श्रीराम रावण के स्थान पर विभीषण को राज्य देते हैं, तब यह संघर्ष जातीय न होकर वस्तुतः वैचारिक ही था। विभीषण भी निशाचर जाति में जन्म लेते हैं किन्तु वे स्वभाव से ही सन्त हैं। उनका प्रयास यही था कि किसी प्रकार यदि रावण श्री सीताजी को श्रीराम के प्रति अर्पित कर अपने दुर्विचारों का परित्याग करने के लिए प्रस्तुत होता है, तो इससे उसकी सत्ता सुस्थिर रहेगी। इसी सद्भावना से प्रेरित होकर उन्होंने रावण को उपदेश देने की चेष्टा की थी किंतु रावण ने उस पवित्र उपदेश के प्रतिदान में उनके ऊपर पाद-प्रहार किया और इस प्रकार विभीषण के हित के लिए किया जाने वाला कार्य वस्तुतः उस सिद्धान्त के संरक्षण के लिए ही है। ऐसी स्थिति में विप्र, धेनु, सुर और संत का हित केवल कुछ समूह अथवा वर्गों का ही कल्याण नहीं है। वह तो विश्व के समस्त प्राणियों का ही हित है। इस प्रकार विप्र, धेनु, सुर एवं संत की रक्षा के लिए अवतरित होकर ईश्वर समग्र विश्व के हित का कार्य सम्पन्न करता है।

(बिरला अकादमी ऑफ आर्ट एण्ड कल्चर, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित मानस मुक्तावली, १ से साभार)

कोई भी निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि भगवान् केवल 'यह' हैं, और कुछ नहीं। वे निराकार हैं, और फिर साकार भी। भक्तों के हित वे रूप धारण करते हैं। किन्तु ज्ञानी की दृष्टि में वे अरूप ही है। जानते हो, यह किस प्रकार है? सच्चिदानन्द परब्रह्म एक अनन्त समुद्र के समान है। तेज ठण्डक के कारण समुद्र में यत्र तत्र बर्फ की चट्टानें तैयार हो जाती हैं। इसी प्रकार मानो अपने उपासकों की भक्ति की शीतलता के प्रभाव से अनन्त अपने को सान्त में रूपान्तरित करता है और उपासकों के सम्मुख साकार भगवान् के रूप में प्रकट होता है। दूसरे शब्दों में, भगवान् अपने भक्तों के सम्मुख शरीरधारी व्यक्ति के रूप में प्रकट होते हैं। पुनः जिस प्रकार सूर्योदय होने पर समुद्र के ऊपर की बर्फ पिघल जाती है उसी प्रकार ज्ञान का उदय होने पर देहधारी भगवान् फिर से अनन्त एवं निराकार ब्रह्म में लय हो जाते हैं। तब साधक को ऐसा अनुभव नहीं होता कि भगवान् एक व्यक्ति हैं, और न तब भगवान के रूप ही दिखाई देते हैं। परन्तु यह ध्यान रखो कि साकार एवं निराकार दोनों एक ही सत्य के दो पक्ष हैं।

—भगवान् श्रीरामकृष्ण

समय की पाबन्दी

—स्वामी आत्मानन्द

[ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विभिन्न विषयों पर विचारोत्तेजक तथा उद्बोधक लेख लिखे थे, जो आकाश- वाणी के विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय-समय पर प्रसारित किये जाते हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख 'आकाशवाणी' रायपुर से समार गृहीत है—स.]

मेरे एक मित्र हैं। समय के बड़े पाबन्द हैं। आज एक सफल उद्योगपति हैं। पहले शिक्षक थे। वे अपनी सफलता का श्रेय समय की पाबन्दी को देते हैं। एक बार उन्होंने किसी उच्चाधिकारी से मिलने का समय लिया था। जिस समय उन्हें मिलने जाना था, उस समय घनघोर वर्षा हो रही थी। स्वाभाविक ही किसी का भी मन कहता कि बाद में मिल लेंगे, अभी हीं मिलना उतना जरूरी नहीं है, फिर अधिकारी महोदय भी तो विवशता समझ हीं लेंगे। पर नहीं, उन्होंने मन को कोई बहानेबाजी नहीं करने दी और उस भयंकर वर्षा में भींगते हुए वे समय पर ही मिलने के लिए पहुँच गए। अधिकारी को बड़ा ही आश्चर्य हुआ, पर साथ ही उन्हें प्रसन्नता भी हुई कि कम-से-कम एक व्यक्ति तो उन्होंने देखा, जो समय का इतना पाबन्द था। बस, उन्होंने मेरे मित्र का काम तुरन्त कर दिया और तब से वे एक-एक करके सफलता के सोपानों पर चढ़ते गये।

समय की पाबन्दी जीवन के सभी क्षेत्रों में काम की है। यदि हम समय पर उठने, सोने, खाने-पीने और अपने काम-काज करने की आदत डालें, तो हम महानता प्राप्त करने की ओर एक सार्थक कदम उठा सकते हैं। इसके द्वारा अल्प समय में अधिक कार्य करने की क्षमता पैदा होती है। संसार में जिन व्यक्तियों ने महानता अर्जित की है, उनमें से अधिकांश का जीवन समय की पाबन्दी की एक सुन्दर गाथा रहा है। महात्मा गाँधी इसके ज्वलन्त उदाहरण रहे हैं। उनकी समय की पाबन्दी के बहुत से किस्से हैं, जो यही दर्शाते हैं कि उन्होंने अपने जीवन की क्रियाओं को किस प्रकार समय के द्वारा नियंत्रित कर लिया था।

प्रत्येक व्यक्ति बड़ा तो बनना चाहता है, पर उसके लिए वह किसी प्रकार की साधना नहीं करना चाहता। छल-बल या धन के जोर पर किसी को बड़प्पन नहीं मिला करता। जो मिला-सा दिखाई भी देता है, वह बालू की नींव पर मकान के समान तनिक से आघात से ढह जाता है। सच्चा बड़प्पन बाधाओं में तपकर और निखरता है। ऐसा बड़प्पन प्राप्त करने का प्रथम सोपान है समय की उपासना।

समय की उपासना हमारे आलस्य और जड़ता को दूर करती है, तमोगुण के आधिक्य को काटती है और हमारी बुद्धि को सतेज बनाती हैं। बहुधा देखा जाता है कि यदि समय पर काम न हो, तो काम टल जाता है और हम दीर्घसूत्रता के शिकार हो जाते हैं। कहा जाता

है कि विश्वविजेता नेपोलियन एक मिनट के विलम्ब से पहुँचने के कारण वाटरलू में पराजित हो गया था।

जो समय की कीमत नहीं समझता, वह वास्तव में मानव जीवन का सही मूल्यांकन नहीं कर पाता। ऐसे व्यक्ति के लिए जीवन में कोई उद्देश्य या लक्ष्य नहीं है। दूसरे शब्दों में कहें तो वह पशुओं से किसी भी प्रकार उच्चतर जीवन नहीं बिताता। पशु काल की गणना नहीं करता और इसलिए उसमें काल का आयाम नहीं होता। पर मनुष्य काल की गणना करता है और इसलिए वह उसे पकड़ भी सकता है। काल की पकड़ का पहला कदम है समय की पाबन्दी।

धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में भी समय की पाबन्दी अनिवार्य बतायी गयी है। यदि मैं साधना के क्षेत्र में पदार्पण करने का इच्छुक हूँ, तो निश्चित समय पर प्रतिदिन की साधना शीघ्रतर फलवती होती है। कुछ लोग पूछते हैं कि समय की निश्चितता पर इतना जोर क्यों? इसका उत्तर यह है कि कोई काम यदि रोज एक निश्चित समय पर किया जाय, तो ठीक उस समय हमारा मन उस कार्य की ओर अपने आप उन्मुख होने लगेगा। उदाहरणार्थ, यदि मुझे ४ बजे अपराह्न चाय पीने की आदत है तो ४ बजते ही मेरे मन में चाय की इच्छा जागृत हो जायगी। यही तर्क निश्चित समय में साधना करने या अन्य कोई काम करने पर भी लागू होता है। इससे हमारा मन अधिक एकाग्र हो जाता है और उसकी छिपी हुई क्षमता अधिकाधिक प्रकट होती है।

समय की पाबन्दी वस्तुतः मन के केन्द्रीकरण का अभ्यास है। मन में असीम सम्भावनाएँ निहित हैं। इन सम्भावनाओं को प्रकट करने का साधन मन का केन्द्रीकरण ही है। समय की पाबन्दी का अभ्यास पहले-पहल कष्टप्रद मालूम होता है, पर धैर्यपूर्वक यदि कोई इसे साध लेता है, तो विश्व उसके लिए अपना खजाना खोल देता है।

(विवेक ज्योति, ३२-३ से साभार)

जड़ और चेतन

मैं एक प्रकार का भौतिकवादी हूँ; क्योंकि मेरा विश्वास है कि केवल एक ही वस्तु का अस्तित्व है। आधुनिक भौतिकवादी भी यही कहते हैं, पर वे उसे जड़ के नाम से पुकारते हैं और मैं उसे 'ब्रह्म' कहता हूँ। ये भौतिकवादी कहते हैं कि इस 'जड़' से ही समस्त आशा, धैर्य तथा सब कुछ प्रसूत हुआ है और मैं कहता हूँ कि 'ब्रह्म' से ही सब कुछ हुआ है।

—स्वामी विवेकानन्द

पाँच कुण्डलियाँ

—निर्मल इटोरया
दमोह (म० प्र०)

रामकृष्ण अनपढ़, सुगढ़ परम विवेकानन्द ।
प्रकट हुआ गुरु शिष्य में, स्वयं सच्चिदानन्द ।।
स्वयं सच्चिदानन्द, मुखर हो उठी ऋचाएँ ।
फिर जीवंत हुईं, उपनिषदों की कविताएँ ।।
यद्यपि मार्ग अनेक, किन्तु गन्तव्य एक है ।
शब्द भिन्न, सब धर्मों का वक्तव्य एक है ।।

प्रकटाया फिर देश का, गौरव पूर्ण अतीत ।
फिर वसुधैव कुटुम्बकम का गाया अनुगीत ।।
का गाया अनुगीत, क्लैब्य कायरता छोड़ो ।
अपने पौरुष से, धरती को नभ से जोड़ो ।।
अमृत पुत्रो ! जितना तुम संघर्ष करोगे ।
उतना ही इस जीवन में उपलब्ध करोगे ।।

नये मनुज को दिखाया, उसका स्वर्ण भविष्य ।
शांत, सुखी आनन्दमय, कैसे हो यह विश्व ।।
कैसे हो यह विश्व, तुष्ट अरु वैभवशाली ।
कैसे जग का धर्म बने, उत्सव खुशहाली ।।
देह-आत्मा दोनों का उत्थान इष्ट है ।
बाहर रण, अन्तस में गहरा ध्यान इष्ट है ।।

दो पग हैं उत्थान के, धर्म और विज्ञान ।
तभी बनेगी यह धरा, मित्रो स्वर्ग समान ।।
मित्रो स्वर्ग समान, नहीं हो कोई निर्धन ।
शोषणहीन और समता मूलक हो जीवन ।।
दीन-दुखी का दुख हरना ही असली पूजा ।
नहीं धर्म मानव-सेवा से बढ़कर दूजा ।।

रामकृष्ण, माँ सारदा, और विवेकानन्द ।
अखिल विश्व-कल्याण का था इनमें अनुबंध ।।
था इनमें अनुबंध, एक ही जगत नियन्ता ।
कण-कण में परिव्याप्त मात्र उस प्रभु की सत्ता ।।
अपने उस प्रभु को, जग के कण-कण में खोजो ।
साधो सहज समाधि इसी जीवन में खोजो ।।

देउलधार इस्टेट अल्मोड़ा में स्वामी विवेकानन्द

— मोहन सिंह मनराल
सुरईखेत, अल्मोड़ा (उ० प्र०)

वर्ष १९९७ में हम स्वामी विवेकानन्द द्वारा भारत भूमि पर दिये गये व्याख्यानों की शताब्दी मनाने जा रहे हैं। इस वर्ष अर्थात् १८९७ में ग्रीष्म-काल में उन्होंने उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा नगर में अपनी दूसरी यात्रा के रूप में तीन माह का लम्बा समय बिताया था। इस दीर्घ अवधि में उन्होंने ४७ दिन नगर से ७५ कि० मी० दूर अल्मोड़ा-बागेश्वर मार्ग पर स्थित एक सुरम्य पहाड़ी स्थान देउलधार इस्टेट पर व्यतीत किये थे जो अल्मोड़ा के एक धनी व्यापारी श्री चिरंजीलाल शाह का उद्यान था। स्वामी जी का इस पहाड़ी स्थान पर इतने दीर्घ समय तक निवास इस स्थान के महत्व को आज भी उजागर करता है। जबकि आज यह स्थान उपेक्षित पड़ा है।

स्वामी जी ने अपने पत्र में लिखा है कि वे आजकल अल्मोड़ा से २० मील दूर एक बाग में निवास कर रहे हैं। स्मरण रहे उस समय घोड़े द्वारा जंगल के मध्य से संक्षिप्त मार्गों से जाना होता था। स्वामी जी को इस यात्रा में तीन घंटे का समय लगता था। इस स्थान पर सेव, आड़ू खुबानी का बगीचा था, सुन्दर वन क्षेत्र से ढके इस ढालूदार भू भाग से हिमालय की हिमाच्छादित चोटियाँ दृष्टव्य थीं। निवास हेतु यहाँ दो बड़े भवन, पाकशाला और घुड़शाल भी थी। इनमें से एक 'विश्राम गृह' था जिसमें स्वामी जी ने निवास किया था।

वर्तमान समय में श्री चिरंजीलाल शाह द्वारा व्यक्तिगत कारणों से इस सम्पत्ति को गुजरात के राजा को (जामनगर) बेच देने के कारण इस सम्पत्ति की मालिक राजा की पुत्री श्रीमती हसरत कुमारी शर्मा हैं जो दिल्ली में निवास करती हैं। वहाँ की देख-रेख को नियुक्त चौकीदार ने बताया कि वे मात्र एक बार यहाँ आई तब से यह स्थान उपेक्षित है और भवन आदि जीर्ण अवस्था में आ गये हैं। 'विश्राम गृह' के निरीक्षण से ज्ञात होता है कि वहाँ उपलब्ध सामान में एक लोहे की खाट व एकाध नक्कासीदार फरनीचर ही हो सकता है जिसे संभवतः स्वामी जी ने प्रयोग किया होगा।

स्वामी जी के इस स्थान पर निवास के समय की किसी विशेष घटना का कोई उल्लेख कहीं नहीं मिलता है मात्र स्वामी जी द्वारा लिखे पत्रों से कुछ काल्पनिक चित्र खींचे जा सकते हैं। स्वामी जी ने इस अवधि में जितने पत्र लिखे उनमें से २२ पत्र उनकी पत्रावली में संकलित हैं जो अपने आप में एक महाकाव्य तुल्य है क्योंकि इन पत्रों में प्रकृति चित्रण सामान्य दैनिक व्यवहार से लेकर उपनिषदों के उच्च भावों का प्रकाशन हुआ है। एक बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि इस एकान्त स्थान में रहकर भी स्वामीजी तीव्र कर्मशील बने रहे और अपने वेदान्त प्रचार की जड़ें इस देश में रोपने में प्राणपण चेष्टा करते रहे थे। ऐसे ही एक पत्र में वे अपने गुरुभाई अखण्डानन्द को लिखते हैं—

शाबाश ! मेरे लाखों आलिंगन और आशीर्वाद स्वीकार करो। कर्म, कर्म, कर्म, मुझे और किसी चीज की परवाह नहीं है। मृत्युपर्यन्त कर्म, कर्म, कर्म। ..."यदि भूखों को भोजन का ग्रास देने में नाम, सम्पत्ति और सब कुछ नष्ट हो जाय तब भी अहोभाग्य, महोभाग्यम। प्रेम से अलौकिक शक्ति मिलती है, प्रेम से ही भक्ति उत्पन्न होती है, प्रेम ही ज्ञान देता है और प्रेम ही मुक्ति की ओर ले जाती है।' मैं योद्धा हूँ और रणक्षेत्र में मरूँगा। क्या मुझे पर्दानशीन स्त्री की तरह बैठना शोभा देता है।"

देउलधार प्रवास में लिखे विभिन्न पत्रों से कुछ बातें हमें उनके दैनिक व्यवहार से परिचित कराती हैं। सार रूप में हम कुछ बातें स्मरण करेंगे। स्वामी जी लिखते हैं—"मैं अल्मोड़ा के एक व्यापारी के सुन्दर उद्यान में हूँ जो कुछ मील पहाड़ियों व जंगलों तक फैला है। परसों रात एक चीता यहाँ आ धमका और बाग में रखे झुण्ड में से एक बकरा उठा ले गया। मिस मूलर चीते वाली घटना सुनकर डर-सी गयी है। सुबह शाम घोड़े पर सवार होकर मैंने पर्याप्त रूप से व्यायाम करना प्रारम्भ कर दिया है। हिमालय के हिम-शिखर मेरे सामने हैं। वे सूर्य के प्रकाश में रजत राशि के समान आभासित होते हैं। और हृदय को प्रसन्न करते हैं। शुद्ध हवा, नियमानुसार भोजन तथा यथेष्ट व्यायाम करने से मेरा शरीर बलवान तथा स्वस्थ हो गया है।"

अपने डाक्टर को लिखे एक पत्र में स्वामी जी लिख रहे हैं—"डाक्टर आजकल जब मैं बर्फ से ढके पर्वतशिखरों के सम्मुख बैठकर उपनिषद से 'न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु प्राप्तस्य हियोगाग्नि-मयं शरीरम्'। यह आवृत्ति करता हूँ उस समय यदि एक बार मुझे देखने को तुम्हें अवसर मिलता।'

मगर आज इस स्थान की अवस्था एक उपेक्षित भूखण्ड की है जहाँ जाकर एक छटपटाहट-सी होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थान अपने स्वर्णिम इतिहास को दुहराये जाने की प्रतीक्षा कर रहा है। वह इतिहास जिसपर इसे गर्व है। मगर इस दिशा में गम्भीरता से प्रयास नहीं हुए हैं जिससे यह स्थान पुनः ध्यान-चिन्तन, व भाव प्रकाशन का केन्द्र बन जाय। आशा की जानी चाहिए वह समय अवश्य आयेगा क्योंकि यह अविश्वसनीय है कि जहाँ स्वामी जी जैसी महान आत्मा ने इतने दिन निवास किया वह स्थान समय के कूड़ेदान में सदा के लिये विलीन हो जायेगा। जय रामकृष्ण !!!

इस कलियुग के लिए भक्तियोग ही श्रेयस्कर है। इस मार्ग पर चलने से अन्य मार्गों की अपेक्षा भगवान् के पास सरलता से पहुँचा जाता है। ज्ञान और कर्म के मार्ग से भगवान् के समीप निःसन्देह पहुँचा जा सकता है, किन्तु वे मार्ग हैं बड़े कठिन।

—श्री रामकृष्णदेव

६ अप्रैल, महावीर जयंती पर विशेष

महावीर का जीवन-दर्शन

—मुमुक्षु शांता जैन

इतिहास के पृष्ठ महान विभूतियों के उज्ज्वल चरित्र और पावन विचारों की अनुपम रेखाओं से भरे पड़े हैं। इसी धरातल पर जन्म लेने वाला एक हाड़-मांस का पुतला महान बनता है और यहीं वह विभूति बनकर हजारों-हजार गुमराहों का मार्ग प्रशस्त करता है। उसकी इस महानता के पीछे एक रहस्य छिपा है कि उसके विचार ऊंचे हों, भावनाएं पवित्र हों और सिद्धांत विश्व-जनीन हों। भगवान् महावीर इन्हीं रश्मियों को लिये इस धरती पर आये। वे स्वयं एक दृष्टि बन गये, एक व्यक्तित्व बन गये और बन गये जन-जन के लिए एक ज्योतित दीपशिखा।

महावीर जन्मे, गृहस्थ बने और तीस वर्ष की यौवनावस्था में महाभिनिष्क्रमण किया। वे अमरत्व की साधना के लिए निकल पड़े, क्योंकि शांति ही उनके जीवन का साध्य बन चुका था। बारह वर्षों तक अगणित संघर्षों की चट्टानों को पार करते हुए उन्होंने शांत, मौन और दीर्घ तपस्वी-जीवन बिताया। उनकी साधना बेजोड़ थी। बारह वर्ष तेरह पक्ष में एकाग्रचित होकर भगवान ने ध्यान द्वारा चैतन्य की अतल गहराइयों तक पहुँच कर यथार्थ सत्य को पा लिया था।

सचमुच ! सहज आनन्द और आत्मिक चैतन्य जब तक जाग्रत नहीं होगा, तब तक बाहरी उपकरणों द्वारा आमोद पाने की चेष्टा होती है। पर जब आनन्द का सहज स्रोत फूट पड़ता है तब चैतन्य का पर्दा स्वतः खुल जाता है।

भगवान् महावीर के जीवन में आने वाले वे अनुकूल-प्रतिकूल कष्ट, जो साधन के पूर्ण विराम हैं, भगवान् को च्युत नहीं कर सके। इसी कारण वे ध्यान, उपवास और आत्मरमण में इतने तन्मय हो गये कि सब कुछ खोकर भी उन्होंने सब कुछ पा लिया। उनकी साधना की अन्तिम निष्पत्ति यह थी कि वे श्रमण महावीर से भगवान् महावीर बन गये।

भगवान् महावीर आत्म-साक्षात्कार के प्रवर्तक थे। आत्म-साक्षात्कार यानी सत्य का साक्षात्कार। सत्य का उपदेश वही दे सकता है, जिसने उसका साक्षात्कार कर किया है। भगवान् महावीर प्रारंभ में कोई सिद्ध बुद्ध नहीं थे। हमी में से एक थे। इसलिए उनकी वाणी उन अनुभवों का का निचोड़ है, जिनका उन्होंने जीवन में अर्जन किया था और जिनके द्वारा वे शुद्ध-बुद्ध बने थे।

भगवान् ने जो कुछ कहा, वह सत्यमय बन कर कहा। इसलिए उनकी वाणी में यथार्थ का रहस्योद्घाटन और आत्मानुभूति का ऋजु उद्बोधन है। हम केवल यथार्थवादी दृष्टि को ही नहीं मानें किन्तु यथार्थ की उपलब्धि को भी सत्य मानते हैं। ये दोनों यथार्थ दृष्टिकोण हैं। आत्मा से परमात्मा बनने की जो साध है, वह है उपयोगितावादी दृष्टिकोण। भगवान् महावीर सत्य के उपदेष्टा थे ! उनके मुख्य उपदेश थे—अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह।

अहिंसा

'अहिंसा परमो धर्मः'—अहिंसा परम धर्म है। 'सर्व भूतेषु संयमः अहिंसा।' सब जीवों के प्रति संयम रखना, उन्हें दुःख न देना, उनके प्रति मैत्री-भाव रखना-अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ है—अनन्त प्रेम और उसका भावार्थ है—कष्ट सहने की अनन्त शक्ति। अहिंसा परम उत्कृष्ट धर्म है। जैसे नदियाँ समुद्र में मिलकर विलीन हो जाती हैं उसी प्रकार सारे धर्म-अहिंसा में समाहित हो जाते हैं। भगवान् महावीर अहिंसा के अजस्र स्रोत थे। हिंसा उनके लिए कभी भी क्षम्य नहीं थी। उनकी दुनियाँ में युद्ध और अशांति जैसे तत्व थे ही नहीं। उन्होंने कहा—'मनुष्य, मनुष्य का शत्रु नहीं हो सकता। युद्ध नारकीय जीवन का हेतु है। तू आत्मा से लड़, बाहरी लड़ाई से तुझे क्या ?'

ध्रुव सत्य की देशना देते हुए महावीर ने कहा—'किसी को मत मारो, मत सताओ, पीड़ा मत दो, हुकूमत मत करो, बलात किसी को अपने अधीन मत करो। जिसे तू मारना चाहता है यह तू स्वयं ही है. अर्थात् उसकी और तेरी आत्मा एक-सी है।

अहिंसा के परिप्रेक्ष्य में भगवान् ने समता का पाठ पढ़ाया। उनका सिद्धान्त था कि किसी को भी तुम अपने से न्यून मत समझो। सभी को 'आत्मव सर्वभूतेषु' समझो। सब आत्माएँ अनन्त शक्ति की स्रोत हैं। किसी को गिराने की चेष्टा मन करो। खुद उठो, औरों को उठाओ। खुद जागो, दूसरों को जगाओ। भगवान् महावीर यह नहीं चाहते थे कि मैं भगवान् बना रहूँ और तुम सब भक्त बने रहो, बल्कि वे चाहते थे कि भक्त भी भगवान् बने, बिन्दु भी सिन्धु बने, रश्मि भी सूर्य बने। उनकी इस विशाल भावना का प्रतीक है—स्त्री को साध्वी बनने का अधिकार देना। आध्यात्मिक अधिकारों में उन्होंने कोई भेद-बुद्धि नहीं रखी। उन्होंने पुरुषों को जितने आध्यात्मिक अधिकार दिये, उतने ही स्त्रियों को भी दिये। उन्होंने स्त्री-पुरुष में तत्वतः भेद नहीं रखा। वे दृढ़प्रतिज्ञ थे और इसी में उनकी महावीरता थी।

महावीर की जीवनव्यापी अहिंसा का स्रोत जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्मतम वृत्ति तक जा पहुँचा। जातिवाद, भाषावाद और श्रेष्ठतावाद आदि जो हिंसा के अंग थे, उनके विरुद्ध क्रांति का शंख बज उठा। वे जातिवाद का विरोध करने नहीं चले थे, उनका साध्य तो मुक्ति था। वे मुक्ति के लिए ही साधना-पथ पर चले थे, अहिंसा का जो तेज निखरा, उससे बुराइयाँ स्वतः नष्ट हो गयीं।

अपरिग्रह

अहिंसा की तरह भगवान् महावीर ने अपरिग्रह का उपदेश दिया। उन्होंने कहा कि परिग्रह को छोड़ो, क्योंकि परिग्रह ही दुःख का मूल कारण है। परिग्रह यानी संग्रह की वृत्ति होगी वहाँ मूर्च्छा भी होगी। क्योंकि मूर्च्छा परिग्रहो बुत्तो'-मूर्च्छा ही परिग्रह है। प्यास को शांत करना अपेक्षित है और हम जल की उपेक्षा करें—यह असंभव है। प्यास जल से ही बुझेगी, आग से नहीं। जो सुख-दुःख से मुक्त होना चाहता है पर भौतिक आकर्षणों से उसका घनिष्ट तादात्म जुड़ा हुआ है तो मुक्ति असम्भव है। परिग्रह ही तो दुःख का मूल कारण है।

आज व्यक्ति अपने को धनवान् और प्रतिष्ठित बनाने की महात्वाकांक्षा में अन्याय, शोषण, हिंसा, धोखाधड़ी जेसे अनैतिक कर्म करने से नहीं चूकता। इसलिए संग्रह-वृति की भावना व्यक्ति को पतनोन्मुखी बना देती है। जिसमें संग्रह की भावना अधिक होगी, उसकी कामनाएँ तृष्णा भी तदनुरूप ऊँची होगी। इच्छाएँ अवकाश के

समान असीम और सागर के समान अथाह होती हैं, उनका न आदि है, न अंत।

ईसा मसीह ने कहा था—'ऊंट सूई के छेद से निकल सकता है पर सम्पत्ति रर ममत्व रखकर उसके संग्रह में प्रवृत मनुष्य स्वर्ग में नहीं आ सकता। भगवान् ने बताया कि अपरिग्रह का अर्थ केवल परिग्रह या धनादि का संग्रह न होना मात्र ही नहीं है। इसका अर्थ है लालसाओं और महत्वाकांक्षाओं का शमन करना, अपनी आवश्यकताओं का स्वल्पीकरण करना। यदि किसी के पास परिग्रह-संग्रह नहीं है फिर भी मूर्च्छा शेष है तो वह अपरिग्रही नहीं हो सकता।

भगवान् महावीर धन-धान्य से परिपूर्ण राज्य-वैभव को छोड़कर अपरिग्रही बने थे। उन्होंने मलाकार के धागों को तोड़ दिया था। वास्तव में त्याग वही व्यक्ति करता है, जिसका ममत्व 'पर' के साथ जुड़ा होता है। भगवान् महाबीर के अपरिग्रह का मतलब है ममत्व से समत्व की ओर, आसक्ति से अनासक्ति की ओर बढ़ना। सच में सुखी वही है, जिसकी आश्यकताएँ कम है।

अनेकान्त

भगवान् ने समन्वयात्मक विचारों का प्रतिपादन किया, क्योंकि वे एकांगी दृष्टिकोण से किसी भी वस्तु, व्यक्ति या पदार्थ को न देखते थे। उनकी दृष्टि थी अनेकान्त। अनेकान्त का अर्थ है 'एक ही वस्तु' के अनन्त या अनन्त विरोधी युगलों को अनन्त दृष्टियों से देखना।

जीवन में असामंजस्य, विसंगतियाँ एवं उतार-चढ़ाव रहते हैं। विरोधी-धर्म अलग-अलग नहीं होते, एक ही वस्तु में होते हैं—जैसे नित्य-अनित्य, सामान्य-विशेष, सत-असत् आदि।

अनेकान्त प्रत्येक क्षेत्र में समाधान प्रस्तुत करता है। आग्रह मुक्ति देता है। शब्द एक ही होता है पर उसके अनेक अर्थ सम्भावित हैं। शब्दों का आग्रह भी कभी-कभी मानसिक द्वन्द का रूप ले लेता है पर स्याद्वाद पद्धति की स्वीकृति हमें अनागत विपदाओं से बचा लेती है।

एक बार एक पत्नी पारिवारिक समस्याओं से परेशान होकर अपने पति से बोली—'मैं अपने पीहर चली जाऊँगी।' पति बोला 'ठीक है, मैं अपने ससुराल चला जाऊँगा।' गन्तव्य स्थल एक था, पर अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न। सत्य एक है पर उसके पक्ष अनन्त हैं। इसीलिए महावीर ने कहा—'ही' का आग्रह मत करो, 'भी' की चेतना में रहकर सबकी अपनी बात कहो और सबकी बात तुम स्वयं सुनो। जहाँ एक ही वस्तु को अनन्त दृष्टियों से देखा जाता है वहाँ फलित होता है शब्दों का, विचारों का, सिद्धान्तों का अनाग्रह, सह-अस्तित्व का भाव।

अनेकान्त का दर्शन आज विश्व का पथ-प्रदर्शक बना हुआ है। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना का मूल हेतु आत्म-निर्णय और स्वायत्तता की यही भावना थी जो महावीर की जीवन-दृष्टि में अनेकान्त के रूप में एक व्यापक दार्शनिक परिवेश प्रस्तुत करती है। भाषा, प्रांत, सम्प्रदाय की विसंगतियों को दूर कर सत्य का चिन्तन हमारे समक्ष रखती है। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर विश्व सरकार का स्वप्न मूत रूप ले सकता है।

वैयक्तिकता का आग्रह भी विश्व-समस्या का एक कारण है। धर्म साधना की कसौटी है—निर्वैयक्तिकता। महावीर का सम्पूर्ण जीवन-दर्शन इसका साक्षी है। इसलिए उनका दर्शन विश्व के समक्ष सांप्रदायातीत आधार प्रस्तुत करता है। महावीर ने साध्य, साधन, सिद्धि और साधक के लिए किसी प्रकार के व्यक्ति-

विशेष का नामांकन नहीं दिया। उनकी साधना नामातीत और देश-काल से सीमातीत थी।

भगवान् महावीर ने कभी नहीं कहा कि मेरे द्वारा प्रस्थापित धर्म ही वास्तविक धर्म है। उन्होंने शाश्वत मूल्यों को परिभाषा की 'सच्चे पाणा ण हंतत्वा, एस धम्मे धुवेणिइये सासए' भगवान् महावीर ने कभी नहीं-कहा-मुझे चंदन करो। उन्होंने कहा राग-द्वेष विजेता हमारे वंदनीय हैं। उन्होंने कभी नहीं कहा—मेरे उपस्थान में जाओ, अन्यथा सिद्धि नहीं होगी। ज्ञान, दर्शन एवं चरित्र का आराधक मुक्ति का अधिकारी है, फिर चाहे वह अन्यलिंगसिद्ध, गृहलिंगसिद्ध अथवा असोच्चाकेवली भी क्यों न हो।

महावीर ने धर्म को उपासना, पूजा, क्रिया-कांडों से बिल्कुल मुक्त रखा। उन्होंने आत्म-शुद्धि पर बल दिया। साधना के लिए महत्वपूर्ण सूत्र प्रतिपादित किया कि 'सपिक्खए आपगमा-एएण' स्वयं स्वयं को देखो। पर का दर्शन आग्रह पैदा करता है। स्व का दर्शन सत्य तक पहुँचाता है। जैन-धर्म निग्रंथ-धर्म है, जिसमें मानसिक वाचिक और कायिक-किन्हीं भी भावों की ग्रंथि विश्व को खण्डित करती हैं। सार्वभौम सत्ता का साम्राज्य अनेकान्त की नींव पर स्थापित किया जा सकता है, क्योंकि अनाग्रह सत्य का सेतुबन्ध है।

महावीर द्वारा प्रस्थापित जैन धर्म की विश्व-व्यापकता को भी आज इसी तरह तथाकथित लोगों ने सम्प्रदाय, जाति और वर्ग के कटघरे में बन्द कर सीमित कर दिया। जो सभीचीन धर्म प्राणीमात्र के प्रति प्रेमभाव रखता हो, सत्योप-लब्धि के लिए क्रियाकांडों, उपासनाओं और परम्पराओं से मुक्त रहता हो और जो दंड, कानून और नियंत्रण को अपरिहार्य मानकर हृदय-परिवर्तन में विश्वास रखता हो, वह धर्म किसी एक का नहीं हो सकता। जो एक का नहीं, वह सबका है।

भगवान् महावीर का उपदेश वास्तव में हमारे लिए एक अमूल्य देन है। परन्तु इसकी सत्यता इसे आत्म-धर्म बनाने में है। अपरिग्रहवाद राष्ट्र और समाज की विषमताओं के अंधेरे को दूर करने के लिए एक प्रकाशस्तंभ है।

भगवान् महावीर के जीवन की समानता को देखें तो पायेंगे कि उनका सागर के समान अथाह और आकाश के समान असीम था। उनका अभय अनन्त पराक्रम अदम्य और सत्य असीम था। उनके हिमालय जैसे महान् जीवन पर दृष्टि डालते-डालते मनुष्य का सिर ऊँचा हो जाता है और श्रद्धा से झुक जाता है।

☐

भगवान् निराकार हैं; और साकार भी। फिर वे इन दोनों अवस्थाओं के परे जो हैं, वह भी हैं। वह केवल वे ही स्वयं जानते हैं कि वे क्या क्या हैं। जो लोग उनसे प्रेम करते हैं उनके हित वे नाना प्रकार से नाना रूपों में स्वयं को व्यक्त करते हैं। किन्तु निश्चय ही वे साकार अथवा निराकार की सीमा से आबद्ध नहीं है।

—श्रीरामकृष्णदेव

महातीर्थ बेलुड़ मठ (२)

—मोहन सिंह मनराल
सुरईखेत, अल्मोड़ा

'भक्तों का हृदय मंदिर बेलुड़' :

श्री रामकृष्ण देव के पवित्र नाम से जिसे भी किंचित स्नेह हुआ उसके लिए बेलुड़ मठ हृदय मन्दिर बन गया जहाँ पद्मासन पर विराजित हैं उसके इष्टदेव भगवान् श्री रामकृष्ण। यदि उसमें आन्तरिकता है, निष्ठा है तो उसे अवश्य ही इस स्थान का दर्शन लाभ होगा। कोई भी प्रभु की इस कृपा से वंचित नहीं रहता है। यहाँ तक की यदि कोई भूल से भी यहाँ पहुँच जाय तो वह सही मार्ग अवश्य पा जाता है। वे स्वयं सुयोग पैदा कर देते हैं और भक्त खींचकर ले आया जाता हे।

मठ में प्रवेश करते ही आभास होता है वह किसी तीर्थ स्थान में आया है। तीर्थ स्थान से आशय ऐसे स्थल से है जहाँ दीर्घ काल तक ईश्वर चिन्तन किया गया हो। इसके फलस्वरूप प्रत्येक आगन्तुक इससे बिना प्रयास के लाभान्वित हो जाता है। ऐसा ही महातीर्थ है बेलुड़ जहाँ का घनीभूत आध्यात्मिक भाव प्रत्येक के मन को न्यूनाधिक प्रभावित किये नहीं रहता। यहाँ के घनीभूत भाव में स्वामी विवेकानन्द की ये पंक्तियाँ विशेष रूप में स्मरण हो आती हैं—

"प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है। कर्म, उपासना, मन: संयम, अथवा ज्ञान, इनमें से एक, एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना ब्रह्मभाव व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ।"

यहाँ अनुभव होता है कि मठ की पवित्र भावधारा स्वामी जी के इसी सत्य का समन्वय बनकर पुण्य सलिला गंगा की तरह प्रवाहित हो रही है। गंगा तट पर सघन वृक्षों, फल-फूलों से आच्छादित मठ के आकाश में कलरव करते हजारों पक्षी यहां के सघन मौन को तोड़ते यह सोचने को बाध्य करते हैं कि इसी प्रकार जीवन में बाधायें, चिन्तायें व वासनायें हैं जो हमें अपने आत्मभाव में स्थित नहीं होने देती हैं। पर इनकी उपेक्षा करके, इन्हें तुच्छ जानकर हमें उस आन्तरिक शान्ति में स्थित होना ही होगा जो खण्डित नहीं की जा सकती है। यह तो प्रभु कृपा से ही संभव है और कृपा हेतु ही है 'प्रार्थना व पुरुषार्थ।' मठ की संध्या आरती ऐसा ही एक अवसर है जो सौभाग्य से प्राप्त होता है पर जिसका स्थाई प्रभाव छूटे बिना नहीं रहता।

सन्ध्या आरती, खण्डन-भव बंधन—

भगवान् श्री रामकृष्णदेव के संगमरमर निर्मित सर्वधर्मभव समन्वय विश्वमन्दिर में सायंकाल की सन्धिबेला में संन्यासी, ब्रह्मचारी गृहस्थ भक्त नर-नारियां एकत्रित होते हैं। स्वामी विज्ञानानन्दजी की अटल साधनाव समर्पण के प्रतीक इस मन्दिर में विराजित हृदयनाथ श्री रामकृष्ण के सम्मुख प्रत्येक हृदय अपनी व्यथा की कहानी कहता है। प्रत्येक शरीर दण्डवत झुककर शरण की प्रार्थना करता है। आश्रय मांगता है। तभी शुरू होती है 'आरती 'खण्डन भव बन्धन' जो पूज्य स्वामी विवेकानन्दजी द्वारा अपने गुरुदेव को अर्पित श्रद्धा सुमन हैं, जिसने उन्हें विचलित होने को बाध्य कर दिया है। भक्तों की करूण पुका

सुने बिना वे तो कैसे रह सकते हैं ? भक्त समवेत स्वर में गा रहे हैं—

"हे भव बन्धन का खण्डन करने वाले, जगत के वंदनीय, मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। तुम मनुष्य को दूषित करने वाले पापों से मुक्त करते हो। तुम्हारे दोनों चरण भव सागर से पार उतार देते हैं। वे भक्तों द्वारा ही प्राप्त करने योग्य हैं। तुम दया की मूर्ति हो और दृढ़ कर्मवीर हो। हे त्यागीश्वर! हे नटवर! मुझे श्री चरणों में प्रेम दो। तुम जाति या कुल का विचार न करके बिना कारण ही भक्तों को शरण देते हो। तुम्हारे दर्शन से जगत निवासियों के सभी दुःख दूर होते हैं। इसीलिए हे दीनबन्धु! तुम ही मेरे आश्रय हो। मैं शरणागत हूँ।"

आरती के साथ प्रभु के स्मरण-मनन में मन ऊपर उठने लगता है। अपने आश्रयदाता की ओर। अपने जीवन के ध्रुवतारे की ओर। थामे है जो मन की डोर। जीवन में कर्तव्य हैं कठोर। आँधियारी रातों का यह सफर पार करते-करते प्रभु कृपा से आती है भोर। ऐसी ही भोर की सूचना देती है 'मंगल आरती' जो ब्रह्ममुहूर्त में शंखध्वनि के साथ शुरू होती है। खामोशी को अधिक गहन करते ध्यानमग्न साधु नक्षत्रों की भाँति दृष्टगत होते हैं। प्रतीक्षा है कब भुवन भास्कर उदित हो जिसके प्रकाश में एकाकार हो जाना है।

एक बार जिसके भी ध्यानासन पर बेलुड़ की पवित्र भावधारा का चित्र आकर बैठ जाय वह चाहकर भी उससे विरत नहीं हो सकता। भक्तों के हृदय पद्म में प्रतिष्ठित हृदयनाथ ही घर-घर वासी हैं। यह अनुभूति तो प्रभु की कृपा से ही संभव है। इसी कृपा के लिए हैं यह सारी दौड़ धूप, यह सारी उछल-कूद। श्री ठाकुर जी के परम भक्त साधु नागमहाशय के इन शब्दों के साथ मठ व गुरु महाराज को कोटिशः प्रणाम—"कृपा, कृपा, अनन्त कृपा, अपने गुण से कृपा।" जय रामकृष्ण !!!

सन् १८९७-९८ स्वामी विवेकानन्द पश्चिमी देशों में अपने सफल वेदान्त प्रचार के उपरान्त भारत लौटे। यह मानो उनके लिये वनवास से लौटना था। कार्य शुरू किया जा चुका था और उसे युगों के लिये प्रवाहमय बनाने की आवश्यकता थी। इसी अभीष्ट के लिए दसक पूर्व उन्होंने यह वनवास धारण किया था। समाधि सुख व अतीन्द्रिय आनन्द की उपेक्षा कर उनके श्री गुरुदेव ने ही उन्हें जग के वन में भेजा था। संसार रूपी वन में जीवों को अपनी मुक्ति का उपाय सुझाने के सरल पथ के अन्वेषण में उन्होंने अपनी पूरी शक्ति झोंक दी थी।

अपनी प्रिय मातृभूमि उन्हें अब एक पवित्र तीर्थ के समान प्रतीत हो रही थी जिसका कण-कण उनके लिये पवित्र था। उन्होंने यह भी कहा था कि उनके कार्य का वास्तविक मूल्यांकन केवल भारतभूमि में ही संभव है क्योंकि भारत यथार्थ धर्म भूमि है। स्वामीजी के प्रचण्ड स्वागत ने उनकी इस बात को सिद्ध भी कर दिया था। अपनी प्रिय मातृभूमि पर पांव रखते ही स्वामीजी ने एक बड़ी महत्वपूर्ण बात कही। उन्होंने कहा—"इस बार केन्द्र भारतवर्ष है।"

इस बार केन्द्र भारतवर्ष है :

स्वामीजी ने अपने एक व्याख्यान में कहा था हमें भारत व पूरी दुनियाँ को जगाना है। उनका विश्वास था कि आने वाला कल भारतवर्ष का होगा जो बीते हुए कल से अधिक महिमामण्डित होगा। दुनियाँ पुनः भारत की ओर देखेगी। मगर कैसे भारत की ओर ?

भारत का मेरुदण्ड है धर्म, धर्म व आध्यात्मिकता, मानवतावाद और प्राणी मात्र व

सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता व आदर। वह भारत अपने दामन में सबको समेट लेता है। वह विश्व को एक कुटम्ब जानकर सबको गले लगा सकता है। वह ईश्वर को जीवन का लक्ष्य बनाकर मानव से ईश्वर तक जीव को उठा सकता है। पूजनीय व वंदनीय बमा सकता। वही भारत इस बार केन्द्र है जो विश्व को भौतिकवाद की ज्वाला तुच्छ स्वार्थ व भोग के नंगे नाच से बचा सकता है। यदि यह भारत नष्ट हो गया तो विश्व से सारी आध्यात्मिकता कूच कर जायेगी और उसके स्थान पर भोग विलास की नंगी सभ्यता चल आयेगी और उसका परिणाम होगा नाश-विनाश और हिंसा, अनाचार।

अत: एक ऐसे केन्द्र का होना अति आवश्यक था जो इस भारत का प्रतिनिधित्व करता। इस केन्द्र निर्माण के लिए स्वामीजी ने अपना सारा कौशल व अन्तर चेतना लगा दी और बारह वर्ष के वनवास के वाद अन्ततः उस केन्द्र की स्थापना की कलकत्ते के पास अपने गुरुदेव की लीलास्थली के निकट बेलुड़ ग्राम में जो आज जगत् विख्यात बेलुड़ मठ के नाम से जाना-पहचाना जा रहा है।

बेलुड़ बना वह केन्द्र :

बेलुड़ में अपने गुरुदेव के मठ की स्थापना से पूर्व स्वामीजी ने अपने एक गुरुभाई से कहा था—हमारे-तुम्हारे लिये मठ-वठ की क्या जरूरत है हम तो कहीं भी पेड़ के नीचे आश्रय ले सकते हैं, जो लोग उनके नाम लेकर आ रहे हैं, वे सब जायेंगे कहाँ ?

मठ की प्रतिष्ठा के समय मठवासियों को लक्ष्य कर उन्होंने कहाथा—"इस मठ से समग्र विश्व में ठाकुर का उदार भाव प्रचारित होगा। यही होगा उनके सर्वधर्मसमन्वय का प्रधान केन्द्र। आप सभी इस मठ को केन्द्र करके उनके भाव-प्रचारे में सहायक बनिए। जगत धन्य हो जायेगा, आप भी धन्य हो जायेंगे।"

श्री श्री ठाकुर जी के पवित्र अस्थिकलश आत्माराम की बेलुड़ में प्रतिष्ठा के समय स्वामी जी ने श्री गुरुदेव को लक्ष्य कर कहा था—"आज से युग-युग तक तुमको यहाँ से ही कृपा-करूणा का वितरण करना होगा।" स्वामीजी का बनवास यहीं सार्थक हुआ था मानो यह कलियुग वध और सतयुग के प्रारम्भ का संधि क्षण हो। ऐसा ही केन्द्र है बेलुड़ जो पावन त्रिदेवों की करूणा, कृपा और प्रेम के वितरण का स्थल है। एक ऐसा केन्द्र जहाँ खड़ा भारत न केवल आज की चुनौतियों को झेलने में सक्षम है वरन् आने वाले युग के कठिन दायित्वों में भी तपकर खरा उतरेगा ऐसा विश्वास न करने का कोई कारण नहीं है।

इस भारत को जिन्दा रहना है जिसका निर्माण गंगा के इस पावन तट से हो रहा है। न केवल अपने लिये वरन् सम्पूर्ण मानवता के लिये जो उसकी ओर निहार रही है। जड़वादी व भोगवादी संस्कृति ने हमेशा मानव को दु:ख पीड़ा और विनाश ही दिया है। यह सिद्ध हो चुका है और आगे भी होगा। यदि भारत ने उसे इसी तेजी से अपनाया तो उसे विनाश को कौन वचा सकता है ?

ऐसे में भी यह त्याग, सेवा और पवित्रता का केन्द्र; यह आध्यात्मिता का अक्षय आगार सदा एक आशा व विश्वास, एक ज्योति स्तम्भ व भारत का प्राण बना रहेगा क्योंकि इस युग को नवजीवन देने स्वयं भगवान् अवतीर्ण हुए हैं। उनकी वाणी के स्वर देते हुए स्वामीजी ने कहा है—"क्या भारत मर जायेगा ? तब तो संसार से भारी आध्यात्किक दूर हो जायेगी, सब नैतिक मूल्यबोध लुप्त हो जायेंगे। धर्म के प्रति समस्त मधुर सहानुभूति की भावना भी चली जायेगी।

सब प्रकार के आदर्शवाद विनष्ट हो जायेंगे। उसके स्थान पर काम और विलासिता दोनों देव-देवी के रूप में राज करेंगे। उस पूजा में धन होगा पुरोहित, प्रताड़ना पाशविक बल और प्रति-द्वन्द्विता होगी पूजा पद्धति और मानवता होगी उसमें बलि सामग्री।"

मगर स्वामी कहते हैं "यह कभी नहीं हो सकता। क्रियाशक्ति से सहनशक्ति हजारों गुना बड़ी है। प्रेम काल घृणा के बल की अपेक्षा अनन्तगुना अधिक है।...भावी भारत प्राचीन भारत की अपेपा अधिक महान होगा।' स्वामी जी ने अपनी दिव्य-दृष्टि से देख लिया था कि भारत के पुनरुत्थान का उपाय क्या है? उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा—"भारत का पुनरूत्थान होगा जड़ की शक्ति से नहीं। चेतना शक्ति से। विनाश की विजय ध्वजा लेकर नहीं शान्ति और प्रेम के ध्वज फैलाकर। भारत का पुनरुत्थान संन्यासियों के गेरुआ वस्त्र का सहारा लेकर होगा। अर्थशक्ति से नहीं बल्कि भिक्षा-पात्र की शक्ति से सम्पादित होगा।"

ऐसी ही चेतना का केन्द्र है बेलुड़ मठ। ऐसे ही शान्ति व प्रेम, समन्वय व सद्भाव के ध्वज उठाये है बेलुड़ मठ। ऐसे ही क्रियाशील संन्यासियों का केन्द्र है बेलुड़ मठ।ऐसे ही मनुष्य तैयार करने में जुटा है बेलुड़ मठ। इस देश के निवासियों की आत्मा को जागृत करने में लगा है बेलुड़ मठ क्योंकि इसके संस्थापक ने वादा किया है—"अपने देशवासियों की आत्मा को जगाने में यदि मुझे सैकड़ों बार मृत्युयातना सहन करनी पड़े तो भी मैं पीछे नहीं हटूँगा।"

इस केन्द्र से गृहस्थ मानव जुड़कर अपनी त्रिताप ज्वाला दूर करे और शान्ति का अधिकारी हो, विश्वजननी की यही तो इच्छा थी। तभी तो वे मुक्तहस्त सभी को आश्रय प्रदान कर रही हैं। उनका द्वार प्रत्येक के लिये खुला है। जो अपनी नौका का पाल उठा देगा वह उनकी कृपा वायु का शीतल झौंका पा जायेगा। यही तो उन्होंने आशा व अभय प्रदान करते हुए कहा है—"ठाकुर (श्री रामकृष्ण) इस बार धनी-निर्धन, पण्डित-मूर्ख सबका उद्धार करने आये हैं। मलय की हवा जोरों से वह रही है। इस बार बांस और घास के अतिरिक्त जिसमें थोड़ा भी सार है वही चन्दन हो जायेगा। जो तनिक सा पाल उठा देगा, शरणागत होगा, वही धन्य हो जायेगा।"

ऐसे पवित्र स्थान को स्वामीजी भक्त हृदय से जोड़ गये हैं जहाँ साक्षात् विराजमान हैं भक्त-शिरोमणि भगवान श्रीरामकृष्ण। जहाँ विराज-मान हैं भक्त जननी श्री श्री सारदा माँ, जहाँ विराजित हैं श्रीकृष्ण के चिर-सखा श्रीरामकृष्ण देव के मानसपुत्र स्वामी ब्रह्मानन्द और जहाँ विराजित है श्री रामकृष्ण के वीर हनुमान शिव अवतार स्वामीजी स्वयं। जहाँ विराजित है उनका वह हृदय जो दीन-दुखियों के लिए धर-धर रोता विलखता था।

यह बेलुड़ मठ एक भव्य विश्व मंदिर, पवित्र श्री गंगा जी का तट व भक्तों के महातीर्थ से भी कहीं अधिक है। शायद उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। जब कोई हृदय से संयुक्त हो जाता है, वह उसकी अनुभूति करता है। उसे प्रतीत होता है यह जीवन्त बैकुण्ठ धाम है जो उसे सारे शौक-ताप से छुड़ा देता है और पवित्र जीवन की पवित्र यात्रा में लगा देता है। वह स्वयं को धन्य पाता है और आनन्द से गुनगुनाता है—

"धन्य भाग्य जो अवसर आया।
प्रभु के आगे शीश झुकाया॥
सौभाग्य उदित हुआ मैं जाना।
प्रभु को कृपा से प्रभु को पाया॥

यरुशलम में भारतीयता का परचम

—प्रो० भीम सिंह, (कश्मीर)

विश्व के तीन प्रमुख धर्मों का श्रद्धा-स्थल—यरुशलम, हजारों वर्ष पुराना ऐतिहासिक नगर—यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों का सांझा तीर्थ है। यहां की 'वेलिंग-वाल' से यहूदियों का अकीदा जुड़ा हुआ है और यहीं पर वह ऐतिहासिक 'स्पेलकर गिरजाघर' है, जहां दो हजार वर्ष पूर्व रोमन शासकों ने ईसा को सूली पर चढ़ा दिया था और इसकी बगल में है—'मस्जिद-अल-अक्सा' 'किबला ए-अव्वल' यानी दुनिया में मुसलमानों की सबसे पहली नमाज की जगह, यहीं पर पैगम्बर हजरत मोहम्मद ने पहली नमाज अदा की थी।

यह विडम्बना ही है कि विश्व के अधिकांश जनमानस को रोशन करने वाला धार्मिक आस्थाओं से जुड़ा यह नगर आज खुद विवादों के गहन अंधकार में डूबा हुआ है। नगर की एक शानदार इमारत में 'इंडियन हास्पाइस' नामक न्यास के माध्यम से भारत के नाम और भारतीय संस्कृति का परचम बड़ी मजबूती और शान से थामे हुए हैं सहारनपुर, उत्तर प्रदेश के शेख मुनीर अंसारी, जिनके पिता कोई सत्तर साल पहले यहां 'आर्मी कंट्रैक्टर' के रूप में आये थे।

धार्मिक कट्टरता और न्यस्त स्वार्थों के कारण पिछले दो दशकों में अनेक विवाद पैदा हुए हैं, जिनसे यरुशलम का वास्तविक गौरव धूमिल होकर रह गया है। लेकिन यहां पर विद्यमान विभिन्न आध्यात्मिक-विश्वासों और मानव-संस्कृति के महान प्रतीकों के कारण यह आशा बलवती होती है कि शीघ्र ही तमाम समस्याएं सुलझ जायेगी और यह नगर पुनः अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा। ऐसे महान नगर में भारतीयता के परचम की दास्तान बड़ी दिलचस्प और रोमांचक है, लेकिन पहले यरुशलम के इतिहास और वर्तमान विवादों पर एक नजर डाल लेना जरूरी होगा।

सन 1947 में राष्ट्रसंघ के प्रस्ताव 181 के द्वारा फिलस्तीन का विभाजन करके यरुशलम के विषय में एक ऐसा निर्णय किया गया था, जो हजारों वर्षों से यहां रहने वाले फिलस्तीनियों के धार्मिक तथा सामाजिक हितों के विरुद्ध था। फिर भी, 1947 से 1967 तक यरुशलम—पुराना यरुशलम—जार्डन सरकार के अधीन रहा। यहीं मस्जिद-अल-अक्सा के सामने 1950 में जार्डन के शाह का कत्ल कर दिया गया। इसके बाद राष्ट्र-संघ द्वारा निर्मित नये देश इस्राइल ने यरुशलम के 'वाल-सिटी' के पश्चिम में नये यरुशलम का निर्माण शुरू कर दिया। 1967 में इस्राइल ने पूरे यरुशलम पर अपना कब्जा जमा लिया, यहां तक कि 'वाल-सिटी' पर भी विमानों से बम बरसाये।

हाल ही में हुआ इस्राइल-फिलस्तीन समझौता भी यरुशलम के सम्बन्ध में खामोश है। फिलस्तीन के अध्यक्ष यासर अराफात हर कीमत पर यरुशलम को फिलस्तीन की राजधानी बनाना चाहते हैं और दूसरी ओर, इस्राइली प्रधानमंत्री इशाक राबिन यरुशलम की एक इंच जमीन भी छोड़ने को तैयार नहीं हैं। राष्ट्रसंघ के प्रस्ताव में भी यरुशलम की देखरेख की जिम्मेदारी राष्ट्रसंघ को ही सौंपी गयी थी, परन्तु 1967 के हमले के बाद इस्राइल ने इसकी अवहेलना कर दी। पुराना यरुशलम जिस लम्बी दीवार से जुड़ा हुआ है, उसका निर्माण करीब छह सौ साल पहले तुर्कमान शासकों ने करवाया था। दुनिया भर के यहूदी जिस 'वेलिंग वाल' को अपना पवित्र-स्थल मानते हैं, वह करीब पांच हजार साल पुराने शहंशाह सुलेमान के महलों के खण्डहर हैं। इसके उत्तरी भाग के साथ जुड़ी है दुनिया के मुसलमानों की सबसे पहली मस्जिद-अल-अक्सा, जहां से शुरू होता है इस्लाम का इतिहास। इस मस्जिद के पश्चिमी भाग में स्थित

है 'स्पेलकर गिरजाघर' जहाँ से ईसा मसीह ने संसार को अपना अन्तिम सन्देश दिया था।

इस प्रकार, पश्चिम एशिया और पश्चिम देशों के तीन प्रमुख धर्मों से जुड़ा है यरुशलम का इतिहास। यहूदियों और फिलस्तीनियों के धार्मिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक लेखकों के बीच भी एक बड़ा विवाद चल रहा है। इस विवाद के साथ-साथ कि यरुशलम किसका है, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि हजरत इब्राहीम से लेकर हजरत मोहम्मद तक जितने भी पैगम्बर आये हैं, उन सभी पर तमाम मुसलमान विश्वास करते हैं और हजरत इब्राहीम से ईसा मसीह तक अवतरित तमाम पैगम्बरों पर सारे ईसाई विश्वास रखते हैं। यही कारण है कि राष्ट्रसंघ ने भी इस्राइली कब्जे की हमेशा निंदा की है और यरुशलम खाली करने के लिए उसे कई बार निर्देश भी दिये हैं। सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव 242 और 338 में भी इस्राइल को अरब देशों के तमाम कब्जाशुदा इलाकों के साथ-साथ यरुशलम को भी खाली करने के स्पष्ट निर्देश दिये गये हैं।

यरुशलम के फिलस्तीनी अरबों की यह शिकायत भी रही है कि वहाँ पर इस्राइलियों ने नये यहूदी रिफ्यूजियों को बसाने के लिए फिलस्तीनियों के घरों को छीनकर यहूदियों के हवाले कर दिया। 1967 के कब्जे के बाद इस्राइल ने लगभग एक लाख चालीस हजार यहूदियों को यरुशलम नगर में फिलस्तीनियों के घरों को उजाड़कर बसा दिया है। इस सम्बन्ध में भी सुरक्षा परिषद और राष्ट्रसंघ ने इस्राइल की कड़ी आलोचना की है। उधर, मस्जिद-अल-अक्सा को भी कई बार इस्राइलियों द्वारा नुकसान पहुँचाने की कोशिश की गयी। इसकी मरम्मत के लिए जार्डन के शाह हुसैन ने लन्दन स्थित अपना मकान बेचकर एक करोड़ पौंड की आर्थिक सहायता जुटायी थी।

इसी मस्जिद-अल-अक्सा की छत्रछाया में एक शानदार इमारत में भारत के नाम और भारतीय संस्कृति का दीप जलाये हैं शेख मुनीर अंसारी। इनके पिता जिला सहारनपुर, उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे और 1924 में यरुशलम में शान्ति-स्थापना के लिए भेजी गयी भारतीय सेना के एक ठेकेदार के रूप में वहाँ गये थे। इसके पूर्व जर्मन अधिकृत यरुशलम में जर्मन सैनिकों ने 'इंडियन हास्पाइस' की बुनियाद रखी थी। इसके बाद जब भारतीय सेना ने यरुशलम को जर्मन सेना से 'टेक ओवर' किया तो इंडियन हास्पाइस' की जिम्मेदारी भारतीय सेना के ठेकेदार शेख मुनीर अंसारी के पिता की हो गयी। इस परिवार की देखरेख में विकसित होती हुई आज यह 'इंडियन हास्पाइस' एक शानदार इमारत में भारतीयता का परचम फहरा रही है। भवन के अनेक कक्षों में लगी शिला-पट्टियों पर भारतीय सेना की उन रेजिमेंटों के नाम खुदे हुए हैं, जिनके सैनिकों ने यरुशलम में शान्ति-स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान किया था। इनमें कुछ प्रमुख नाम हैं—ट्रावंकोर रेजिमेंट, कोचीन रेजिमेंट, दिल्ली रेजिमेंट आदि। भारत ही एकमात्र ऐसा देश है, जो यरुशलम के 'वाल-सिटी' में ख्याति प्राप्त है।

सन् 1992 में जब मैं पहली बार अपनी रिपोर्टिंग टीम के साथ यरुशलम गया था तो भारत का इस्राइल में कोई दूतावास नहीं था। मुनीर अंसारी साहब ने हमारी अगवानी की और इतनी आवभगत की जितनी कि हम अपने दूतावास से भी अपेक्षा नहीं कर सकते। उनके सहयोग से अनेक फिलस्तीनी और इस्राइली नेताओं, अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करने में भी आसानी हुई। 15 अगस्त को स्वतंत्रता-दिवस पर हमने 'इंडियन हास्पाइस' के अहाते में समारोह मनाया और भारतीय ध्वज फहराया। इस समारोह की भारत के समाचार पत्रों में बहुत चर्चा हुई थी।

शेख मुनीर अंसारी यरुशलम में ही पैदा हुए और उनके बेटों ने फिलस्तीनी अरब लड़कियों से शादियाँ की। उनके पोते-पोतियाँ भी यहीं पैदा हुए हैं और सबसे दिलचस्प बात यह है कि सभी के पास इंडियन पासपोर्ट है। जब मैंने उनसे पूछा कि वे पैदा भी यरुशलम में हुए, शादी भी यहीं हुई और अरबी भाषा और संस्कृति में रचे-बसे हैं, फिर भी वे भारतीय नागरिकता को क्यों बरकरार रखना चाहते हैं ? उनका उत्तर था—'नागरिकता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और भारत की तुलना में मुझे और किसी देश की संस्कृति, सुन्दरता और इतिहास उससे अधिक प्रभावित नहीं करते।' प्रसंग को आगे बढ़ाते हूए उन्होंने बताया कि अपनी पत्नी को भारतीय पासपोर्ट दिलाने के लिए उन्होंने बारह साल तक कड़ा संघर्ष किया। पिछले वर्ष तक भारत के इस्राइल के साथ राजनयिक सम्बन्ध नहीं थे और उन्हें इंडियन पासपोर्ट रखने और हासिल करने के लिए यरुशलम से अम्मान (जार्डन) जाना पड़ता था अथवा किसी और देश के भारतीय दूतावास से सम्पर्क करना पड़ता था।

पुरानी यादों को ताजा करके थोड़ा संजीदा होते हुए उन्होंने बताया कि भारतीयता की इस यादगार को कायम रखने के लिए उन्हें कितनी मुसीबतों का सामना करना पड़ा, कितनी कुर्बानियाँ करनी पड़ी—यहाँ तक कि इस्राइलियों की बमबारी में उनकी वहन को प्राण गँवाने पड़े। फिर, बड़े फख्र से मुनीर अंसारी साहब ने बताया कि किस तरह उन्होंने 1947 में भारत के विभाजन के दौरान और उसके बाद पाकिस्तान के कई षड्यंत्रों को विफल कर दिया, जिनके द्वारा पाकिस्तान इस न्यास का नाम 'इंडियन हास्पाइस' की जगह 'पाकिस्तान हास्पाइस' करके इस पर अपना कब्जा जमाना चाहता था। बड़ी हिम्मत और बहादुरी के साथ मुकाबला करते हुए उन्होंने पाकिस्तान के इन नापाक इरादों को कभी पूरा नहीं होने दिया। उनका कहना था—'उनके पूर्वजों की खाक भारत की मिट्टी से जुड़ी है। जिस तरह हम अपने दादा-परदादा का नाम नहीं बदल सकते, उसी तरह हम अपने इस न्यास का नाम कैसे बदल सकते हैं ?' और, फिर सहज सन्तोष व्यक्त करते हुए उन्होंने बताया कि यह न्यास न केवल इस प्राचीन ऐतिहासिक नगर में भारतीयता की पहचान संजोकर रखे हूए है, बल्कि एक शैक्षणिक न्यास के रूप में भी कार्यरत है।

यरुशलम के संबंध में भारत की नीति 1947 से ही स्पष्ट रही है। भारत ने हमेशा फिलस्तीनियों के अधिकारों की वकालत की है और कहा है कि यरुशलम को समस्या का समाधान फिलस्तीन के साथ और उसी स्तर पर किया जाना चाहिए। फिलस्तीनी मुक्ति मोर्चे ने बड़ी सफलता के साथ गाजा पट्टी और जेरिको में एक नये इतिहास की शुरूआत की है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि आने वाले समय से फिलस्तीन अपनी स्वतंत्रता के पथ पर निरन्तर अग्रसर होता रहेगा। इस क्षेत्र में शान्ति-स्थापना के लिए इस्राइल को गोलान पहाड़ियों से सेनायें हटानी होगी, सीरिया की भूमि को लौटाना होगा और दक्षिणी लेबनान को भी छोड़ना होगा। फिर भी, अरब-इस्राइल के बीच स्थायी शान्ति तब तक मुमकिन नहीं है जब तक यरुशलम की समस्या का न्यायिक समाधान न ढूँढ़ लिया जाय।

विश्व के राजनीतिक समीक्षक इस बात से इनकार नहीं कर सकते कि तीसरे विश्वयुद्ध की चिंगारी यरुशलम से भड़क सकती है। यरुशलम की समस्या का समाधान सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव 242 और 338 के क्रियान्वयन से ही सम्भव है। इस्राइल को पश्चिम यरुशलम से ही संतोष करना होगा, ताकि पुराने यरुशलम में फिलस्तीन की राजधानी कायम हो सके। अन्यथा, विश्व के तीनों धर्मों के शान्ति का प्रतीक—यरुशलम विश्व के लिए विनाशकारी सिद्ध हो सकता है। ★

जागो हे मनु पुत्र !

कुमारी ऋचा रश्मि
स्नातकोत्तर वनस्पति शास्त्र
राजेन्द्र महाविद्यालय, छपरा

अभी हाल की बात है, मैं सपरिवार पटना राँची एक्सप्रेस से बोकारो से पटना लौट रही थी। रेलवे स्टेशन पर और दिनों की अपेक्षा कुछ ज्यादा ही भीड़ थी। अधिकांश युवक ही थे जो किसी प्रतियोगिता परीक्षा में शामिल होकर लौट रहे थे। निर्धारित समय पर गाड़ी आयी। यात्री अपनी रिर्जवेशन नम्बर के मुताबिक सीट तलाश रहे थे। गाड़ी पूरी भर चुकी थी। सीट के कारण युवकों को कुछ यात्रियों से तना-तनी हो गई। पुलिस बुलायी गई। वे सभी युवक वेटिकट यात्रा कर रहे थे। पुलिस के जवान बल प्रयोग कर उन्हें निकाल रहे थे। कुछ बाहर हुए और कुछ बैठे रहे। गाड़ी चली रात के 10.30 बजे। गाड़ी चले कुछ देर ही बीती होगी कि एक सुनसान पहाड़ी इलाके में चेन खींच कर गाड़ी रोक दी गई। लड़के उतर गए और रेलवे लाईन के किनारे पड़े पत्थरों को गाड़ी में फेकना शुरू किया। यात्री इस अप्रत्याशित हमले के लिए तैयार नहीं थे। भीतर कोहराम मच गया, खास तौर पर छोटे बच्चे और महिलाएँ विशेष रूप से हताहत हुईं। रोंगटे खड़े हो जाते हैं उस भयानक यात्रा की याद करते ही। लड़के यात्रियों को इसलिए परेशान कर रहे थे क्योंकि उन्होंने पुलिस बुलाकर युवाओं की यात्रा में व्यवधान पैदा किया था। फिर किसी का सर फूटा, किसी की आँख गई और किसी को भयानक चोट लगी। पर इस सुनसान बियावान में सुनने वाला कोई नहीं था। लड़के पुन: ट्रेन में सवार हुए। गाड़ी चली। युवाओं ने फिर अन्य यात्रियों को परेशान करते हुए यात्रा पूरी की।

यह तो एक नमूना था जो हमारे साथ घटित हुआ। पर आजकल तो यह आम बात हो गई है। मैं सभी युवाओं की बात नहीं कर रही पर अधिकांश का यही हाल है। यही हैं इस स्वतंत्र भारत के स्वतंत्र नागरिक जो अनैतिक हुकूमत को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं।

जिन युवाओं को देश का कर्णधार कहा जाता है, जिनके कन्धों पर इस देश का भविष्य टिका है। जिन्हें स्वामी विवेकानन्द ने एक सफल उन्नत देश की रीढ़ का हड्डी कहा है...... क्या हम उनसे ऐसी अपेक्षा कर सकते हैं। पर यही यर्थाथ है इसे स्वीकारना ही होगा। आज हर खून एक दूसरे खून का प्यासा हैं। स्वयं का जीवन किसी दूसरे की जागीर है, कब क्या हुक्म हो और कब सर धड़ से अलग कर दिया जाए। अपराधों की गिनती की जाए तो पन्ने कम पड़ जाएँगे लिखने के लिए। हर एक Micro Second में एक जघन्य अपराध होता है। पता नहीं विनाश का यह कैसा ताण्डव है हमें अब यह सोचने पर मजबूर होना पड़ता है कि हम तभी किसी संतान को जन्म देने के अधिकारी हैं यदि हम उसे मनुष्य बना सकें, एक सुरक्षित जीवन एवं उज्जवल भविष्य दे सकें।

यह एक आवश्यक मुद्दा है कि युवाओं की संचित असीम उर्जा का रूपान्तरण ऐसे आक्रमक कार्यों में हो रहा है, इसके लिए क्या वे स्वयं जिम्मेदार हैं या कोई और भी ?

सच तो यह है कि इस परिस्थिति के लिए सभी बराबर-बराबर रूप से दोषी हैं। सारा समाज एक पूरा परिदृष्य इसमें शामिल है। आज एक वर्ग तो उन युवाओं का है जो जन्म से ही एक अच्छे उद्देश्य को लेकर आते हैं परिश्रम और लगन द्वारा अपने प्राप्य को प्राप्त करते हैं। दूसरी श्रेणी के वैसे युवा हैं जो प्रयत्नशील हैं, परिश्रमी हैं, लक्ष्य

प्राप्त करते हैं पर देर से। एक विशेष दल ऐसा है जो जूझते-जूझते थक जाता है या फिर प्रयास ही नहीं करता अपने को स्थापित करने के लिए। गलत रास्ते अपना लेता है एक उचित मार्ग दर्शन के अभाव में।

यही तीसरे दल के युवाओं में जो संक्रमण की भावना दहक रही है वे ही समाज को खोखला बना रहे हैं। हम अपने इतिहास पर गौर करें तो बहुत सारे उपाय बताए गए हैं लक्ष्य प्राप्ति के लिए। प्रर्याप्त उपदेश, एक से बढ़कर एक धर्मग्रंथ, आदर्श और साहित्य है। पर आज के युवा वर्ग की नजर में Pop music और Western, Eastern mind culture adaptation की तुलना में old model पुराने नमूने हैं। आदर्शों को मानने वाले निम्न मानसिकता वाले लोग कहे जाते हैं। यह हमारे देश के लिए दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है? युवा वर्ग गुमराह हो रहा है, युवतियाँ भी इसमें पीछे नहीं है। इसमें उनके अभिभावक भी पूरी भूमिका निभा रहे हैं। सबसे ज्यादा दुर्दशा ऊँचे घराने के बच्चों की है। अभिभावक उन्हें तमाम सुविधाएँ प्रदान करते हैं यह जानकर संतुष्ट हैं कि बच्चे को हमने सारी सुख सुविधा दी है वे आराम से हैं पर असल चीज बच्चों को नहीं मिलती वह है अपनों का प्यार और सामिप्य, एक उचित मार्ग दर्शन। दूसरा वर्ग सबसे नीचे के तबके का है जो बिलकुल भूखमरी की जिन्दगी गुजार रहा है, जीने खाने का कोई सहारा नहीं है। सोने के लिए फूट-पाथ भी मयस्सर नहीं है। इसके कारण उन चीजों की पूर्ति के लिए वे कुछ भी करने को तैयार हैं— माँ बहन की सौदेबाजी से लेकर देश की निलामी तक। कितनी भयानक परिस्थिति है गौर से विचार करने पर सिर चक्कर खाने लगता है। चारों ओर विनाश का सैलाब ही सैलाब दिख पड़ता है।

आखिर इसके उन्मूलन का भी तो कोई,रास्ता होगा। रास्ते तो अवश्य ही हैं पर इन पर चलना सीखना होगा। हम युवाओं को स्वयं अपने युवा भाई बहनों के साथ-साथ चलना होगा। हमारे इस पूण्य कार्य में हमारे सबसे उन्नत्त और उत्कृष्ट आदर्श चिर युवा स्वामी विवेकानंद सिद्ध होते हैं। वे कहते हैं "भागो नहीं बदलो······समस्याओं से भागना कायरता है उससे जूझना सीखो।"

स्वामी जी कहते हैं "भारत माता आज युवाओं की बलि चाहती है जिससे इसका पूर्ण उत्थान हो सके···पर आज हम युवा जो विनाश की गर्त में गिर रहे हैं क्या ऐसे युवाओं की बलि माँ स्वीकार करेगी? बलि के लिए मनुष्य चाहिए। उनके अनुसार एक सच्चे मनुष्य में त्याग, तितिक्षा, सहन-शीलता, धैर्य असीम आत्मविश्वास आदि होना आवश्यक है।

स्वामी जी कहते हैं "तुम स्वयं को पहचानो तुम तो अज अविनाशी, आनन्दमय, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान, नित्य ज्योतिर्मय आत्मा हो, तुम उसी परम पिता ईश्वर की संतान हो, तुम में भी उसी ईश्वर का अंश है जो इस सृष्टि का सृजनहार है।" मनुष्य जाति के नाम शायद ही इतना बड़ा दावा किसी ने पेश किया हो।

उनके अनुसार जब हमारी उत्पत्ति ही श्रेष्ठ से हुई है तो हमारा कार्य भी उत्कृष्ट होना चाहिए।

आज हम शिक्षा तो ग्रहण कर रहे हैं पर वह वैसी शिक्षा नहीं है जो एक व्यक्ति के व्यक्तित्व के चहुमुखी विकास के लिए आवश्यक है।

स्वामी जी विशेष तौर पर हम युवाओं को संदेश देते हुए कहते हैं "आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धा सम्पन्न और दृढ़विश्वासी निष्कपट युवकों की ऐसे सौ मिल जाए तो संसार का काया पलट जाए। हमेशा बढ़ते चलो। मरते दम तक गरीबों पददलितों के लिए सहानुभूति। हे वीर युवकों स्वयं जागो और औरो को जगाओ मुझे असीम आत्मविश्वास चाहिए, धैर्य चाहिए। ईश्वर के प्रति आस्था रखो दुःखियों का दर्द समझो और

ईश्वर से सहायता की प्रार्थना करो वह अवश्य मिलेगी। आज्ञा पालन के गुण का अनुशीलन करो गुरुजनों के अधीन हुए बीना कभी भी कोई शक्ति केन्द्रीभूत नहीं होती और बीखरी हुई शक्तियों को केन्द्रीभूत किए बीना कोई महान कार्य नहीं हो सकता।"

हम युवाओं के लिए तो स्वामी जी की अनन्त और असीम आशीर्वाद सदैव हमारे साथ है। आवश्यकता है उसे महसूस करने की और कर्मक्षेत्र में व्यवहार करने की। हमें जल्दी करना होगा। ऐसा न हो कि हम सोये रह जाएँ और पानी सर से उपर हो जाए।

*

मनन करने योग्य :

जीवनमुक्त गृहस्थ

पं० श्री शिवराम किंकर जी स्वामी विवेकानन्द जी के विद्यागुरु थे। वे अद्वितीय विद्वान् थे और गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी निरन्तर ईश्वराधन में लगे रहते थे। दुःख-सुख में उनको समत्व-बुद्धि हो गयी थी। बड़े-बड़े विद्वान् भी उनकी विलक्षण प्रतिभा से चकित होकर उनका शिष्यत्व ग्रहण कर गौरव का अनुभव करते थे। अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ वे ध्यानयोग की साधना में तल्लीन रहते थे। उनकी तन्मयता विचित्र थी। वे दुःसह अर्थाभाव, रुग्णता, आदि भयावह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अचल, शान्त और सहिष्णु बने रहते थे। उनका भगवद्विश्वास अडिग था, जिससे वे असाधारण धीर पुरुष कहे जाते थे। वराहनगर नामक ग्राम में उनका गृह था। विद्वत्ता, सरलता, निरभिमानता एवं लोकरक्षक मृदुल स्वभाव के कारण परिवार के एवं अन्य लोग उनके अनुकूल रहते थे। वे सदैव उनकी आज्ञा का पालन करते थे। स्वामी विवेकानन्द जी भी उनसे संस्कृत पढ़ा करते थे। तब उनका नाम 'नरेन्द्र दत्त' था और वे नवयुवक थे।

एक समय की बात है, अर्थाभाव के कारण पं० श्री शिवराम किंकर जी के घर तीन दिनों तक चूल्हा नहीं जला। सारा परिवार भूख से व्याकुल हो रहा था। इस पर भी अध्यापन कार्य बंद नहीं हुआ और विद्यार्थी अध्ययन के लिये आते रहे। पं० श्री शिवराम किंकर जो भी आनन्द और उत्साह के साथ विद्यार्थियों को पढ़ाते, शास्त्रों की विस्तृत व्याख्या करते और ज्ञान-चर्चा में मस्त रहते। किसी को भी जरा भान न हुआ कि पंडित जी परिवार सहित तीन दिन से निराहार हैं, क्योंकि उनके चेहरे पर विषाद और उदासीनता की छाया तक न थी।

आज तीसरा दिन था। सदा की भाँति आज भी पण्डित जी विद्यार्थियों को पढ़ाने में व्यस्त हो गये। उन्हीं छात्रों में नरेन्द्र दत्त भी थे। इसी समय डाकिया एक तार लेकर आया, जो पण्डित जी के नाम से था। पंडित जी ने तार को खोला और उसे पढ़ने लगे। पढ़ते-पढ़ते उनकी आँखों से अश्रुधारा बह चली। वे बड़ी देर तक उस तार को मस्तक से लगाये रहे।

यह अनोखा दृश्य देखकर नरेन्द्र दत्त ने कौतूहलपूर्वक पूछा--'बाबा! सामान्य कारण से हिमालय नहीं हिला करता। आज मैं आपकी विचित्र दशा देख रहा हूँ, जो आपकी आंखों से

अश्रुधारा बह रही है और आप नित्य प्रफुल्लित रहनेवाले धीर पुरुष होते हुए भी शोकाकुल दिखाई दे रहे हैं, मुझे आश्चर्य है। आपको इसका रहस्य समझाना ही होगा।'

पण्डित जी ने तार नरेन्द्र के हाथ में दे दिया। वह काशी से आया था। किसी अपरिचित शिव भक्त जमींदार ने दस रुपये तार से भेजे थे और लिखा था कि 'हमारे घर में शिवमूर्ति स्थापित है। रात्रि में शिवजी ने मुझसे कहा कि मैं तीन दिन से भूखा हूँ। मैंने तुम्हारी पुजा ग्रहण नहीं की है, क्योंकि मेरा परम भक्त पं० श्री शिवराम किंकर बराहनगर में रहता है, वह तीन दिन से उपवास कर रहा है। उसके पास अन्नादि खरीदने के लिये रुपये नहीं हैं। तुम उसको तार से शीघ्र कुछ रुपये भेज दो। उसके भोजन करने के बाद ही मैं भोजन करूँगा। अतः मैं भगवान शिवजी की आज्ञा से ये रुपये भेज रहा हूँ।'

इस अद्भुत घटना को पढ़कर नरेन्द्र दत्त को महान आश्चर्य हुआ। शिवजी की कृपा का अद्भुत चमत्कार देखकर उनके आँखों से भी प्रेम-नीर प्रवाहित होने लगा। वे ऊँचे गले से बोले—'बाबा मैं भी तो आपका शिष्य हूँ। आपने जब तीन दिन से कुछ भी भोजन नहीं किया तो मुझे क्यों नहीं बतलाया। मैं आपका सब प्रबन्ध कर देता। आप भूखे पेट पढ़ाते रहे और मैं पढ़ता रहा, यह तो महान अपराध हो गया। इस अपराध का तो मुझे भारी दण्ड मिलना चाहिये। मैं आपका दास हूँ, आपकी संतान हूँ एवं मुझपर आपका अहैतुक स्नेह भी है, फिर आपने मुझसे यह बात गुप्त क्यों रखी? ऐसा कहते हुए वे गुरुजी के चरणों पर गिर पड़े और फूट-फूटकर रोने लगे।

नरेन्द्र दत्त के प्रेम को देखकर पं० श्री शिवराम किंकर जी गद्‌गद हो गये। उन्होंने नरेन्द्र दत्त को गले से लगाकर कहा—'नरेन्द्र! घबराओ मत। जब हमारे पिता विद्यमान हैं, तब हम अपने पुत्रों से क्यों याचना करें? हमारे परम पिता, परम सुहृद सर्वज्ञ भगवान् शंकर को हमारी सबसे अधिक चिन्ता है। हमलोगों को भोले बालक की तरह सदैव उनके आश्रित होकर निर्भय एवं निश्चित रहना चाहिये। जब वे सर्वज्ञ सदैव सर्वत्र विद्यमान हैं, तब फिर हम अपने अभाव की बात और किससे कहें? उनके रहते हुए किसी दूसरे से याचना करना उनका अपमान करना है।'

भगवद्विश्वास की अद्भुत और विचित्र बात सुनकर नरेन्द्र दत्त का विषाद मिट गया और उनके हृदय में प्रकाश छा गया। पं० श्री शिवराम किंकर जी की जीवनमुक्त स्थिति को देखकर सभी लोग आश्चर्य चकित थे। इस प्रकार भगवदाश्रित होकर निर्भय एवं निश्चिन्त रहना ही जीवन्मुक्ति है। पं० श्री शिवराम किंकर जी महाराज ने आगे चलकर संन्यास ले लिया और वे योगत्रयानन्द जी के नाम से विख्यात हुए।

(कल्याण : दिसम्बर, १९९७ पृ० ९०७-८ से साभार)

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत था स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण संस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें निःशुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबंधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक

स्वामी सुवीरानन्द

सचिव

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।
2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.-१४-८३
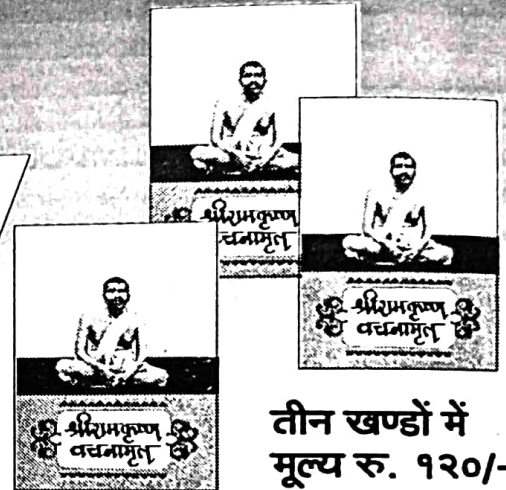
श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।